भारतीय संस्कृति ऐसी महान संस्कृति है जिसमें आदि से लेकर
आज तक गुरु-शिष्य परंपरा चली आ रही है।
श्री लीलाशाहजी महाराज के
श्रीचरणों में पूज्य बापूजी
गुरु वसिष्ठजी के श्रीचरणों में भगवान श्रीरामजी
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सिर दीजे सद्गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥
गुरु सांदीपनिजी के श्रीचरणों में भगवान श्रीकृष्ण
गुरुपूर्णिमा ११ जुलाई
समर्थ रामदासजी के श्रीचरणों में छत्रपति शिवाजी
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
जून २००६
हिन्दी
श्री शुकदेवजी के श्रीचरणों में राजा परीक्षित

वर्ष : १६ अंक : १६२ जून २००६ ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं. २०६३ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

चारों वेद कहते हैं...

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥

'जो पुरुष अपने ही समान दूसरों को भी सुखी देखने की कामना रखते हैं, उनके पास रहने से विद्या प्राप्त होती है, अज्ञान का अंधकार दूर होता है, धन प्राप्त होता है और दरिद्रता का विनाश होता है । अतएव हम सब आत्मदर्शी महापुरुषों के समीप रहें ।' (ऋग्वेद : १.६.३, यजुर्वेद : २९.३७, सामवेद : उत्तरार्चिक १३.४.११, अथर्ववेद : २०.२६.६)
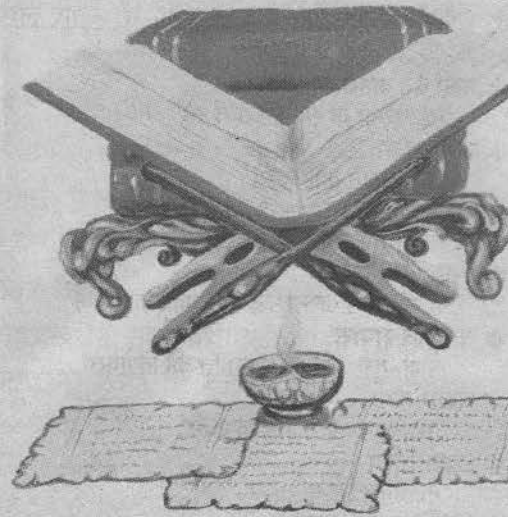
महापुरुषों के सान्निध्य में रहें

जो बात जितनी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है वह उतनी ही अधिक बार दोहरायी जाती है । उपरोक्त मंत्र चारों वेदों में आया है, चार बार दोहराया गया है । इससे इसकी अद्वितीय महत्ता उजागर होती है ।

वेद भगवान कहते हैं कि जिन्होंने स्वयं आत्मसुख प्राप्त किया है, जो सभीमें अपने ही आत्मस्वरूप को देखते हैं तथा जो 'सबका मंगल, सबका भला' के अपने सहज स्वभाव के कारण **सर्वभूतहितेरताः** अर्थात् सभी प्राणियों के हित में रत हैं, ऐसे आत्मदर्शी महापुरुषों का सान्निध्य-लाभ हमें लेते रहना चाहिए । उनकी समीपता से हमें क्या-क्या लाभ होंगे ?

(१) हमें विद्या प्राप्त होगी जिससे अज्ञान का अंधकार दूर होगा । यहाँ 'विद्या' शब्द किसी लौकिक विद्या का वाचक नहीं है । वेद भगवान तो उसी विद्या को वास्तविक विद्या बताते हैं, जो मनुष्य को शाश्वत आत्मसुख दिलाकर अविद्यात्मक भवबंधन से मुक्त कर दे । आर्ष वचन है : **सा विद्या या विमुक्तये ।**

इस जगत में एक से बढ़कर एक जागतिक विद्याओं के ज्ञाता हो गये और होते रहेंगे । इतिहास में उनकी खूब गाथाएँ पढ़ने को मिलती हैं और आगे भी मिलती रहेंगी । इतिहास में तथा सत्शास्त्रों, महापुरुषों में यह अंतर है कि इतिहास केवल बीते हुए का वर्णन करता और सत्शास्त्र, महापुरुष बीती हुई घटनाओं का वर्ण करके, उन घटनाओं-कथाओं को माध्यम बनाकर ह किसका अनुकरण करना चाहिए - किसका नही किसमें हमारा हित है - किसमें नहीं, इसका उपदे देते हैं । इस प्रकार हमारा उत्तम पथप्रदर्शन करनेवा ब्रह्मज्ञानी संत-महापुरुष हमारे परम हितैषी हैं ए उनका सत्संग, उनके अमृतवचनों से युक्त सत्शास दिव्य दीपस्तंभ हैं ।

संत जब बोलते हैं तो उनके हृदय में हमारे हि का संकल्प भी होता है । उनके नेत्रों से परम सात्त्विक आनंद-शांति प्रदायक तरंगें सतत निकलती रहती हैं इसलिए शास्त्रों ने उनकी दृष्टि को 'अमीदृष्टि' 'भुवनपावनी दृष्टि', 'नूरानी निगाह' आदि अनेक नाम दिये हैं । सिख धर्म कहता है : **'ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृतवर्षी ।'**

(२) महापुरुषों के सत्संग-सान्निध्य से हमें धन प्राप्त होगा और दरिद्रता का नाश होगा ।

धन दो प्रकार का होता है - बाह्य धन औ आंतरिक धन । बाह्य धन की दृष्टि से तो बहुत लोग धनी मिलेंगे परंतु आत्मसंतुष्टि, अंतर की सुख-शांति

के धन के बिना बाह्य धन होते हुए भी निगुरे लोगों की आंतरिक कंगालियत नहीं मिटती । संत तुलसीदासजी ने सुंदर ढंग से कहा है : **'बिन रघुवीर पद जीय की जरनि न जाई'** आत्मपद के बिना जीवात्मा का आंतरिक ताप नहीं जाता, त्रिताप नहीं मिटता । बाह्य धन कोई शाश्वत, वास्तविक धन नहीं है, वह आता-जाता रहता है । आत्मसुख का आंतरिक धन ही शाश्वत, वास्तविक धन है जिसे मृत्यु भी हमसे छुड़ा नहीं सकती । महापुरुषों के सत्संग-सान्निध्य से यह दुर्लभ धन हमें प्राप्त होता है और भीतरी खोखलेपनरूपी दरिद्रता का नाश होता है । जैसे हाथी के पदचिह्न में अन्य सभी प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं, वैसे ही इस आत्मसुख के धन की प्राप्ति में अन्य सभी अभावों की पूर्ति समायी हुई है । जिन्हें यह वास्तविक धन प्राप्त हुआ है उनकी सेवा के लिए तो देवता भी तरसते हैं । यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि अदृश्य रूप में उनकी सेवा करके अपना भाग्य बनाते हैं ।

लोग लोहे को सुवर्ण बनानेवाले पारस पत्थर के बारे में सुनते हैं तो उसे देखने और पाने की इच्छा करते हैं । ऐसे कई लोग हैं जिन्होंने उसे पाने हेतु पूरा जीवन दाँव पर लगा दिया परंतु उन्हें वह नहीं मिला । बाहरी सोना देनेवाला पारस सब लोग नहीं पा सकते हैं तो क्या हुआ, आंतरिक सुख, आत्मा-परमात्मा का आनंद देनेवाला महापुरुषों के सत्संग-दर्शनरूपी पारस तो सभी पा सकते हैं । इस पारस का स्पर्श होते ही जीवन समता के सच्चे सुख से, आत्मशांति के सच्चे विश्राम से, आत्मतेज से देदीप्यमान होने लगता है । फिर बाह्य सुवर्ण की चमक फीकी लगने लगती है । आत्मसुख का रस पा लो तो तुम आत्मानंद, आत्मतेज से देदीप्यमान हो उठोगे । आत्मसुख ऐसा सुख है, जिसकी अनुगामिनी बनकर बाह्य धन, सुख-समृद्धि पीछे-पीछे आ जाती है ।

काव्य गुंजन

॥ संत मिलन को जाइये ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहीनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

'मनुष्य-देह मिलना दुर्लभ है । वह मिल जाय फिर भी वह क्षणभंगुर है । ऐसी क्षणभंगुर मनुष्य-देह में भी भगवान के प्रिय संतजनों का दर्शन तो उससे भी अधिक दुर्लभ है ।'

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

'हे नारद ! कभी मैं वैकुण्ठ में भी नहीं रहता, योगियों के हृदय का भी उल्लंघन कर जाता हूँ परंतु जहाँ मेरे प्रेमी भक्त मेरे गुणों का गान करते हैं वहाँ मैं अवश्य रहता हूँ ।'

कबीर सोई दिन भला जा दिन साधु मिलाय ।
अंक भरै भरि भेंटिये पाप शरीरां जाय ॥१॥
कबीर दरशन साधु के बड़े भाग दरशाय ।
जो होवै सूली सजा काटै ई टरी जाय ॥२॥
दरशन कीजै साधु का दिन में कई कई बार ।
आसोजा का मेह ज्यों बहुत करै उपकार ॥३॥
कई बार नहीं करि सकै दोय बखत करि लेय ।
कबीर साधू दरस ते काल दगा नहीं देय ॥४॥
दोय बखत नहीं करि सकै दिन में करु इक बार ।
कबीर साधु दरस ते उतरे भौ जल पार ॥५॥
दूजै दिन नहीं करि सकै तीजै दिन करु जाय ।
कबीर साधू दरस ते मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥६॥
तीजे चौथे नहीं करै सातैं दिन करु जाय ।
या में विलंब न कीजिये कहै कबीर समुझाय ॥७॥
सातैं दिन नहीं करि सकै पाख पाख करि लेय ।
कहै कबीर सो भक्तजन जनम सुफल करि लेय ॥८॥
पाख पाख नहीं करि सकै मास मास करु जाय ।
ता में देर न लाइये कहै कबीर समुझाय ॥९॥
मात पिता सुत इस्तरी आलस बंधु कानि ।
साधु दरस को जब चलै ये अटकावै खानि ॥१०॥
इन अटकाया ना रहै साधू दरस को जाय ।
कबीर सोई संतजन मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥११॥
साधु चलत रो दीजिये कीजै अति सनमान ।
कहै कबीर कछु भेंट धरूँ अपने बित अनुमान ॥१२॥
तरुवर सरोवर संतजन चौथा बरसे मेह ।
परमारथ के कारणे चारों धरिया देह ॥१३॥
संत मिलन को जाइये तजी मोह माया अभिमान ।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे कोटि यज्ञ समान ॥१४॥

(शेष पृष्ठ ८ पर)

पर्व मांगल्य

व्यासपूर्णिमा का इतिहास एवं उद्देश्य

महाभारत, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भागवत आदि के रचयिता महापुरुष वेदव्यासजी के ज्ञान का मनुष्यमात्र लाभ ले, इसलिए व्यासपूनम को, गुरुपूनम को, आषाढ़ी पूनम को देवताओं ने वरदानों से सुसज्जित कर दिया कि जो सत्शिष्य सद्गुरु के द्वार जायेगा, सद्गुरु के उपदेश पर, सद्गुरु के संकेतों पर चलेगा, सद्गुरु का सान्निध्य पायेगा उसे बारह महीनों के व्रत-उपवास करने का फल इस पूनम के व्रत-उपवास मात्र से हो जायेगा।

वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है उतनी ही वह विभु (बड़ी, व्यापक) होती है और जितनी विभु होती है उतनी वह स्वतंत्र भी होती है । आपके शरीर से आपका मन ज्यादा विभु है । शरीर तो गाड़ी की गुलामी करेगा किंतु मन तो फटाक्-से घर पहुँच जायेगा, मुंबई, कोलकाता, देश-परदेश पहुँच जायेगा । मन से भी ज्यादा आपकी मति विभु है और मति से भी ज्यादा आपका जीव विभु है । जीव से भी ज्यादा आपका आत्मा-परमात्मा विभु है। ऐसे विभु के ज्ञान को देनेवाले जो महापुरुष हुए वे 'व्यास' कहे गये और उन महापुरुष का ज्ञान समाज को मिलता रहे, समाज खा-पीकर पशु की नाईं अपनी जिंदगी पसार न करे अपितु बड़ा दुर्लभ मनुष्य-शरीर, दुर्लभ चीज परमात्म-सुख पाने के लिए है - ऐसे ज्ञान की, सत्संग की जो सुंदर व्यवस्था उन महापुरुषों ने की, उसका लाभ समाज को मिलता रहे इसलिए व्यासपूर्णिमा मनायी जाती है ।

व्यासपूर्णिमा भारत में तो अनादि काल से मनायी जाती है तथा धरती के कई देशों - जैसे एटलांटिक सभ्यता, दक्षिण अमेरिका, यूरोप, मिस्र, मेसोपोटेमिया, तिब्बत, चीन और जापान में भी मनायी तो जाती थी परंतु वहाँ परब्रह्म परमात्मा का अनुभव किये हुए, आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए व्यासजी जैसे महापुरुष नहीं हो पाये और व्यासजी के आदेशों को, व्यासजी के उद्देश्य को, व्यासजी के मार्गदर्शन को ठीक से समझनेवाला, समझकर उसके अनुसार चलनेवाला समाज भी नहीं हो पाया । केवल भारत में ही ऐसे महापुरुषों की परंपरा बनी रही और महापुरुषों से लाभ लेकर अपनी सात पीढ़ियाँ तारनेवाले सत्पुत्र, सत्पात्र भी इसी देश में बने रहे हैं, इसलिए आज भी भारत में व्यासपूर्णिमा का महोत्सव सुरक्षित है । एक-दो जगह नहीं, दस-पाँच जगह नहीं, पचीस-पचास जगह नहीं, देश भर में जहाँ-जहाँ अच्छे, उच्चकोटि के, उच्च आदर्शों के धनी, उच्च नियम और संयम के धनी, उच्च अनुभव और उच्च प्रकाश के धनी गुरु लोग हैं वहाँ यह व्यासपूर्णिमा मनायी जाती है।

जब तक मानव-जाति को सच्चे सुख की आवश्यकता है और सच्चे सुख का अनुभव करानेवाले गुरु जब तक धरती पर हैं, तब तक गुरुओं का आदर एवं पूजन होता ही रहेगा । गुरु का पूजन गुरु का आदर है, सत्य का, ज्ञान का आदर है; अपने जीवन का आदर है। अपनी मनुष्यता का आदर ही सद्गुरु का आदर है । जो अपने मनुष्य-जीवन का आदर नहीं जानता, वह सद्गुरु का आदर क्या जाने ? जो अपने मनुष्य-जीवन का महत्त्व नहीं जानता, वह अपने सद्गुरु का महत्त्व क्या जाने ? जो अपने मनुष्य-जीवन की महानता नहीं जानता है, वह सद्गुरु की महानता क्या जाने ? सद्गुरु का ज्ञान लहराता सागर है और शिष्यरूपी चंद्र को देखकर उछलता है। निर्मल बुद्धि हो जाता है शिष्य ! निर्मल बुद्धि में कोमलता आती है। वह निर्मल बुद्धि शुद्ध हृदय में ज्ञान का जगमगाता प्रकाश, आनंद, नित्य नवीन रस प्रकट करने में सक्षम होती है।

(गुरुपूर्णिमा पर्व : ११ जुलाई २००६)
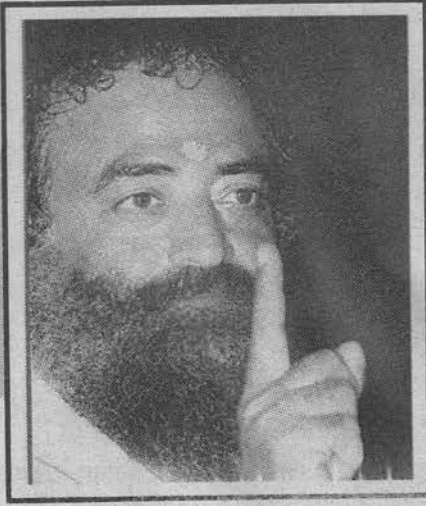
हे साधक ! जन्मसिद्ध अधिकार को पा ले

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान कहते हैं :

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥
(गीता : २.७२)

हे पृथानंदन ! इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होकर कभी कोई मोहित नहीं होता। आखिरी श्वास छोड़ते-छोड़ते भी उस ज्ञान में स्थिति हो गयी तो फिर उसे निर्वाण अर्थात् परम शांति, परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

मुक्ति हमारा लक्ष्य है, जन्मसिद्ध अधिकार है और मुक्त होना यह सबके अधिकार में है। साधन साध्य से अभिन्न है। साधन हर कोई कर सकता है। साधन वह नहीं हो सकता जो हम कर नहीं सकते। वह पाठ हमारे लिए निकम्मा है जो हम पढ़ नहीं सकते।

'बाबा ! हम तो साधारण आदमी हैं, हम तो गिरे हुए हैं, हम तो पिछड़े हुए हैं। हम तो बुद्धि में पिछड़े हुए हैं, हम तो विषय-विकारों में गिरे हुए हैं, हम तो धन में पिछड़े हैं, हम तो फलाने हैं...' लेकिन माँग सभीकी एक है।

'महाराज ! हमारी माँग पैसे की है, फलाने की माँग यश की है, फलाने की माँग बेटे की है, फलाने की माँग पत्नी की है। बाबाजी ! माँग एक कैसे है ?'

माँग की वस्तुएँ अनेक हैं लेकिन माँग एक है। सबकी माँग है सब दुःखों से निवृत्ति और परम आनंद की प्राप्ति। साधन सबके अलग-अलग, कर्म सबके अलग-अलग, रुचि सबकी अलग-अलग लेकिन उद्देश्य सबका एक है।

भगवान, सत्शास्त्र और महापुरुष ऐसी बात नहीं करते जो आप न कर सकें और ऐसी बात भी नहीं कहेंगे जो आपको चाहिए नहीं। आपको चाहिए सब दुःखों का अंत, आपको चाहिए सदा पूर्ण सुख लेकिन साधन करते-करते असाधन चालू रखते हो इसीलिए साधन का प्रभाव पूर्णता तक नहीं जा पाता। शुभ करते-करते अशुभ को पोषण देते हो तो शुभ का सामर्थ्य अशुभ की पूर्ति में लग जाता है।

गुरुपूर्णिमा पर्व का संदेश है - १. असाधन मिटायें और साधन करें तो साध्य सहज में प्राप्त हो जायेगा।

कभी भी अपनेको अयोग्य न मानें, 'हम साधन नहीं कर सकते' - कभी भी यह न मानें और 'साध्य हमें नहीं मिलेगा' - ऐसा न मानें क्योंकि साध्य और साधक की दूरी नहीं है। जहाँ सब दुःखों की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति है उसमें और तुम्हारे में दूरी नहीं है केवल नासमझी है, पर्दा है। तुम्हारे में और तिजोरी में तो दूरी है लेकिन तुम्हारे में और तुम्हारे साध्य में दूरी नहीं है परंतु साधन में रुचि नहीं है, अपने पर और अपने पिया (परमात्मा) पर दृढ़ भरोसा नहीं है इसलिए सब कुछ करते-कराते - धन कमा लिया, सत्ता पा ली, यह भोग लिया, वह भोग लिया लेकिन ठनठनपाल ! क्योंकि मनुष्य-जीवन साधन जीवन है और साध्य को पाये बिना

(शेष पृष्ठ २१ पर)

संस्कृति सुवास

मोक्ष-गुरु : वैदिक संस्कृति की विशेष

'प्रश्नोपनिषद्' में आता है : भरद्वाजपुत्र सुकेशा, शिबिपुत्र सत्यकाम, गर्गसुत सौ कौसल्य, विदर्भवासी भार्गव और कात्यायन कबन्धी आदि-परब्रह्म के उपासक छः पिप्पलाद ऋषि की शरण में जाकर बैठते हैं। उनके चरणों में नमस्कार करके बोलते हैं :

''महाराज ! हम लोग ब्रह्मज्ञान के लिए आये हैं।''

पिप्पलाद ने कहा : ''दक्षिणा के बिना कोई यज्ञ सफल नहीं होता, इसलिए दक्षिणा

महात्माओं ने कहा : ''ठीक है महाराज ! जैसी वस्तु लेनी होती है उसीके अनुरूप देनी होती है। हम आपके पास अपना बड़ा 'मैं', अपना आदिस्वरूप लेने आये हैं, दक्षिणा में अपना छोटा 'मैं' आपको दिये देते हैं।'

'आप ही हमारे पिता हो। हमारे लौकिक माता-पिता ने हमको यह शरीर प्रदान कि जन्मने-मरनेवाला है, जिसमें हड्डी-मांस-चाम होता है, जिससे पाप-पुण्य होता है, जिस बार सुखी और सत्रह बार दुःखी होते हैं परंतु हम आपसे ब्रह्म-शरीर चाहते हैं इसलिए हमारे असली पिता हैं।''

त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसि। (प्रश्नोपनिषद : ६.८)

''आप ही हमारे पिता हैं क्योंकि आपने हमें अविद्या के उस पार कर दिया है।''

गुरु कैसे पिता हैं ? वे ब्रह्म-देह के दाता हैं। इससे क्या होता है कि वे अविद्या के प तारण कर देते हैं।

> "महाराज ! जैसी वस्तु लेनी होती है उसीके अनुरूप दक्षिणा देनी होती है। हम आपके पास अपना बड़ा 'मैं', अपना आदिस्वरूप लेने आये हैं, इसलिए दक्षिणा में अपना छोटा 'मैं' आपको दिये देते हैं।"

इस देश के अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व के किसी कोने में गुरु-शिष्य का यह वैदिक सं मिल सकता। अर्थ-गुरु, काम-गुरु आपने सुने ही हैं। व्यापार के लिए व्यापारी गुरु चाहि के लिए पति या पत्नी गुरु चाहिए, धर्म के लिए पुरोहित, मौलवी, पादरी गुरु चाहिए संस्कृति को छोड़कर किसी भी संस्कृति में कोई चौथा गुरु नहीं होता क्योंकि अर्थ, क धर्म - ये तीन ही पुरुषार्थ माने जाते हैं। केवल वैदिक संस्कृति ही मोक्ष को पुरुषार्थ मा तीनों पुरुषार्थों से मुक्त करके अद्वितीय परमात्मा में स्थित करने के लिए वह मोक्ष स्वीकार करती है। इसलिए यहाँ मंत्र में पिता शब्द मोक्ष-गुरु का वाचक है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही देवता और महेश्वर हैं। गुरु साक्षात् परमात्मा हैं। उन गुरुदेव को नमस्कार है।'

मोक्ष-गुरु साधक शिष्य के साधन-शरीर का निर्माण करते हैं, पालन-पोषण करते दोषी शरीर का संहार करते हैं। इसलिए वे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं एवं स्वयं वे शिष्य कि के रूप में परब्रह्म हैं। धन्य हैं वे लोग जो ऐसे ब्रह्मज्ञानी, प्रगट ब्रह्मस्वरूप के शिष्य सौभाग्य पाते हैं।

आपको भी उस ब्रह्मानंद की एक बूँद चखा दी जाय, ब्रह्मानंद का, अहं ब्रह्मास्मि का थोड़ा-सा स्वाद चखा दिया जाय तो आप भी जग जाओगे । उत्प्रेरक पुरुषों के करीब होते हैं तो वह खुशबू आपको आने लगती है कि 'हाँ, सचमुच हम आत्मा हैं, जड़ नहीं ।

महापुरुष : केटेलिटिक एजेंट

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

रमण महर्षि बहुत कम बोलते थे, प्रायः मौन रहते । महर्षि के होनेमात्र से, बुद्ध पुरुषों के होनेमात्र से हम लोगों को लाभ होता है । जैसे हम जल को तोड़ें तो दो पदार्थ मिलते हैं - हाइड्रोजन व ऑक्सीजन परंतु उन दोनों को जोड़ें तो फिर जल नहीं बनता । सामान्य सिद्धांत यह हुआ कि हाइड्रोजन व ऑक्सीजन को जोड़ दें तो जल होना चाहिए लेकिन नहीं बनता । हाइड्रोजन व ऑक्सीजन आकाश में होते हैं फिर भी पानी नहीं बनता । पानी तब बनता है जब बिजली की उपस्थिति होती है । हालाँकि विद्युत का हिस्सा पानी में होता नहीं है पर विद्युत का वहाँ उपस्थित होना आवश्यक है । उसको वैज्ञानिकों ने 'उत्प्रेरक' (Catalytic agent) नाम दिया है । ऐसे ही परमात्मा और तुम हो, फिर भी साक्षात्कार नहीं होता । जैसे विद्युत के होनेमात्र से हाइड्रोजन व ऑक्सीजन पानी बन जाते हैं, ऐसे ही जब उत्प्रेरक की नाईं सद्गुरु, रमण महर्षि जैसे कोई बुद्ध पुरुष जीव के समक्ष केवल बैठ जायें तो सत्पात्र शिष्य उनके सत्संकल्प का प्रसाद पाकर ब्रह्ममय हो जाता है।

आद्य शंकराचार्यजी ने कहा है : ''जीव ब्रह्म से परे नहीं है, अलग नहीं है ।''

...तो ऐसे उत्प्रेरक बुद्ध पुरुष, महापुरुष रमण महर्षि बैठे थे । एक साधक ने प्रणाम किया एवं कहा : ''अच्छा महाराज ! अब मैं अपने गाँव जाता हूँ ।''

महर्षि ने कहा : ''यदि तुम आते हो तो भले जाओ ।''

''हाँ, मैं आया था न, बापजी !''

''तुम इधर एक-दो दिन रहे तो भी समझ नहीं पाये ?''

''अब समझ गया महाराज ! मैं नहीं आया था, मेरी देह आयी थी । देह आती-जाती है, मैं कहीं आता-जाता नहीं हूँ । घड़ा आता है और घड़ा जाता है, घड़े के अंदर जो आकाश दिख रहा है वह न आता है, न जाता है ।''

बहुत ऊँची बात है । हजार-हजार उपवास करो, लाख-लाख मंत्र जपो किंतु यह जागृति, यह स्मृति जब तक नहीं आती तब तक पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं होती ।

सुनी हुई कहानी है कि कोई चरवाहा जंगल से सिंह का बच्चा ले आया था । उसकी आँखें भी नहीं खुली थीं, एकदम नन्हा-सा था । उसे पता ही नहीं कि मैं सिंह हूँ - कौन हूँ ? सिंहनी का मुँह भी नहीं देखा था उसने । उस बच्चे को घर में पाला गया । जो कुछ सात्त्विक भोजन खाया जाता है वह उसे खिलाया जाता । वह पालतु कुत्ते की नाईं घर में घूमता था । एक दिन चरवाहे के पैर में थोड़ी चोट लगी और खून बहा । सिंह के बच्चे ने जरा-सा खून सूँघ लिया, चख लिया । फिर तो उसमें छिपी हुई मातृ-पितृ परम्परा की जो देन है वह जग गयी, उसमें छिपा हुआ जो सिंहत्व है वह जग गया और वह गर्जना करने लगा, गुर्राने लगा । अब उसको घर में रखना मुश्किल हो गया । जो व्यक्ति आज तक उसे नचाता था, उठाता था, बिठाता था, चलाता था, यह अब जग गया तो वह भाग गया और आखिर उस सिंह के बच्चे को स्वतंत्र कर दिया गया । वह वनराज हो गया ।

एक घड़ी भर में ही उसकी सोयी चेतना जग गयी । ऐसे ही आपको भी उस ब्रह्मानंद की एक बूँद चखा दी जाय, ब्रह्मानंद का, **अहं ब्रह्मास्मि** का थोड़ा-सा स्वाद

चखा दिया जाय तो आप भी जग जाओगे । उत्प्रेरक पुरुषों के करीब होते हैं तो वह खुशबू आपको आने लगती है कि 'हाँ, सचमुच हम आत्मा हैं, जड़ नहीं । हम आनंदस्वरूप हैं इसलिए जिन वस्तुओं से प्रेम करते हैं उनसे आनंद प्राप्त होता है और जिन वस्तुओं से नफरत करते हैं वे हमारे लिए निकम्मी हो जाती हैं । हम शाश्वत हैं यह बात सच्ची है ।

बाल अवस्था आयी और गयी, जवानी आयी और गयी, वृद्धत्व आया और गया... बाल अवस्था के पहले भी मैं था, बात तो सच्ची है । अरे, मृत्यु के बाद भी मैं रहनेवाला हूँ इसलिए मैं अनंत हूँ, बात तो सच्ची है । मैं अनंत हूँ, अविनाशी हूँ, आनंदस्वरूप हूँ, सत्स्वरूप हूँ, देह सत्य नहीं है । देह तो बनती है और बिगड़ती है पर मैं बनता-बिगड़ता नहीं, मैं तो बदलता नहीं । मैं तो उसका प्रभु हूँ ।'

इस प्रकार का भाव आपका थोड़ा-थोड़ा उभरता है । इस भाव के साथ यदि आप सहमत हो जाते हैं, इस भाव को यदि आप मजबूत करते हैं तो आपमें छिपा हुआ जो ब्रह्मत्व है, वह जग जाता है ।

(पृष्ठ ३ का शेष)

तुलसी इस संसार में भाँति भाँति के लोग।
हिलिये मिलिये प्रेम सों नदी नाव संयोग ॥१५॥
चल स्वरूप जोबन सुचल चल वैभव चल देह।
चलाचली के वक्त में भलाभली कर लेह ॥१६॥
सुखी सुखी हम सब कहें सुखमय जानत नाँही।
सुख स्वरूप आतम अमर जो जाने सुख पाँहि ॥१७॥
सुमिरन ऐसा कीजिये खरे निशाने चोट।
मन ईश्वर में लीन हो हले न जिह्वा होठ ॥१८॥
दुनिया कहे मैं दुरंगी पल में पलटी जाऊँ।
सुख में जो सोये रहे वा को दुःखी बनाऊँ ॥१९॥
माला श्वासोच्छ्वास की भगत जगत के बीच।
जो फेरे सो गुरुमुखी ना फेरे सो नीच ॥२०॥
अरब खरब लों धन मिले उदय अस्त लों राज।
तुलसी हरि के भजन बिन सबे नरक को साज ॥२१॥
साधु सेव जा घर नहीं सतगुरु पूजा नाँही।
सो घर मरघट जानिये भूत बसै तेहि माँही ॥२२॥
निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति सों सेव।
जो चाहे आकार को साधू परतछ देव ॥२३॥
साधू आवत देखि के चरणौ लागौ धाय।
क्या जानौ इस भेष में हरि आपै मिल जाय ॥२४॥
साधू आवत देख करि हसि हमारी देह।
माथा का ग्रह उतरा नैनन बढ़ा सनेह ॥२५॥

गुरुभक्त

महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों के साथ वैशाली में ठहरे थे । सभी भिक्षु एकाग्रचित्त हो उनकी अमृतवाणी का पान कर रहे थे । तभी तथागत बोले : ''भिक्षुओ, सावधान आज से चार महीने बाद मैं यह नश्वर शरीर छोड़ दूँगा इसलिए जो करने योग्य हो, करो ।'' सभी अवाक् रह गये, किसीके मुख से कोई आवाज न निकली । भिक्षुओं पर मानो दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा । सभा विसर्जित हुई ।

कोई सोच रहा था कि 'हमारा क्या होगा ? संघ का क्या होगा ?' तो कोई सोच रहा था कि 'उत्तराधिकारी कौन होगा ?' कुछ शिष्य बुद्धदेव के श्रीविग्रह से अत्यंत प्रेम करते थे । अब वह विलुप्त होनेवाला है, अतः वे उनके दैनिक उपयोग में आयीं वस्तुएँ संग्रहित करने में लगे । कोई उनका चीवर ले गया तो कोई पुराना कमंडल तो कोई पादुका । इन वस्तुओं के पीछे कुछ शिष्य आपस में मनमुटाव भी कर बैठे । परंतु बुद्ध का एक शिष्य इन सबसे कुछ अलग ही था । उसका नाम तिष्य था । उसने जब यह समाचार सुना तो मौन हो गया ।

उसका स्वभाव विनम्र, सहनशील व अन्य भिक्षुओं के प्रति सहयोग की भावनावाला था । अतः सभी उसे बड़ा स्नेह करते थे । उसका मौन होना सभीको अखरने लगा । आशंका हुई कि कहीं बुद्धदेव के निर्वाण का समाचार सुनकर तिष्य विक्षिप्त तो नहीं हो गया ? कहीं उसकी स्मृति तो नहीं चली गयी ?

अंत में सब उसे लेकर महात्मा बुद्ध के पास पहुँचे और अपनी आशंकाएँ व्यक्त कीं । बुद्धदेव मुस्कराये, नेत्र बंद कर कुछ क्षणों के लिए मौन हो गये । फिर तिष्य से बोले : ''वत्स ! ये भिक्षु तुम्हारी स्थिति के बारे में जानना चाहते हैं । इनके संतोष के लिए तुम अपनी भावदशा कहो ।''

तिष्य ने बुद्धदेव के चरणों में प्रणाम कर कहना प्रारंभ किया : ''जब मैंने सुना कि आप चार माह बाद परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे तो मैंने सोचा कि मेरे मन का राग अभी

तिष्य

मिटा नहीं है । मैं अभी अवीतराग हूँ । आपके रहते ही मुझे वीतरागत्व प्राप्त कर लेना चाहिए । यही सोचकर मैंने ध्यान में ही अपनी समस्त शक्ति केन्द्रित कर दी है ।''

तिष्य का कंठ गद्‌गद हो गया । ''आपने भिक्षुओं को यही आदेश दिया था कि जो करने योग्य है, कर लो । देर मत करो । भगवन् ! मैं आपके उसी आदेश का पालन करने की कोशिश कर रहा हूँ । अब आपसे आशीर्वाद माँगता हूँ कि मेरा संकल्प पूरा हो । आपके जाने से पूर्व तिष्य विदा हो जाय ।''

सारा संघ भावविभोर हो उठा । तिष्य के वचनों ने सभीके हृदय को मोम-सा पिघला दिया । तिष्य बोला : ''भगवन् ! मैं अपने लिए मौत की माँग नहीं कर रहा । यह तिष्य स्थविर नाम का जो अहंकार है, उसकी मौत माँग रहा हूँ । मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए ।''

तिष्य के उद्‌गार सुनकर महात्मा बुद्ध ने यह गाथा कही :

पविवेकं रसं पीत्वा रसं उपसमस्स च ।

निद्‌दरो होति निष्पापो धम्मपीति रसं पिवं ॥

अर्थात् एकांत का रस पीकर, शांति का रस पीकर मनुष्य निडर होता है और धर्म का प्रेम रस पीकर निष्पाप होता है ।

इस धम्मगाथा को स्पष्ट करते हुए महात्मा बुद्ध बोले : ''एकांत का अर्थ है अपने भीतर गोता मारो । कहीं दूर भागने का अर्थ एकांत नहीं है । एकांत का मतलब इतना ही है कि अब तक तुमने संबंधों में बहुत ज्यादा ऊर्जा खपायी है । अब अंतर्मुख हो जाओ । ऐसे एकांत में ही शांति का रस घुला है, जिसे पीकर मनुष्य निडर होता है । फिर जीवन की कोई पीड़ा, कोई दुःख उसे प्रभावित नहीं कर सकता । जिसने अंतर्मुखता के इस शांत रस का स्वाद चखा, वही धर्म का प्रेम रस पीकर निष्पाप होता है । उसे ही धर्म का बोध होता है, वही निर्वाण को प्राप्त होता है ।
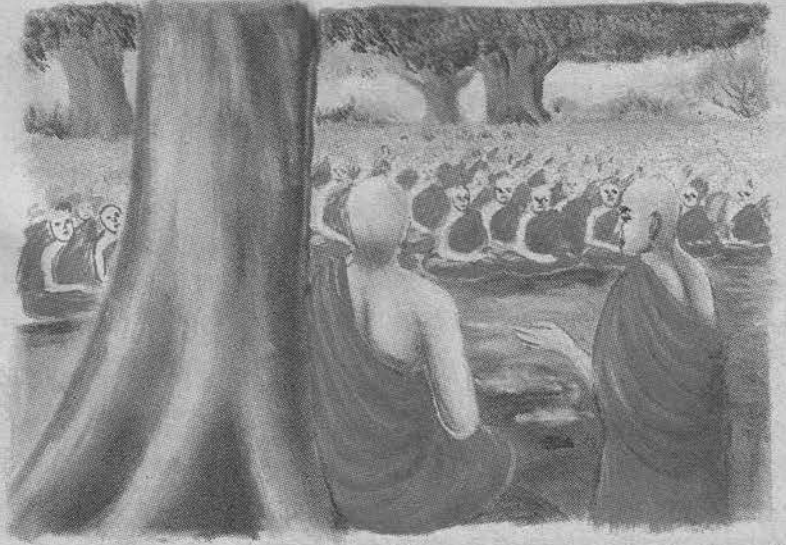
भिक्षुओ ! तिष्य इस धम्मगाथा को सार्थक कर रहा है । जो मुझसे स्नेह करता है उसे तिष्य के समान होना चाहिए । यही तो वह सत्य है जिसे मैंने कहा था कि करो । रोने-धोने से क्या होगा ? रो-धोकर तो जिंदगियाँ बिता दीं तुमने । चर्चा करने से क्या होगा ? झुंड-के-झुंड बनाकर विचार करने से और विषाद करने से क्या मिलेगा ? तुम मुझे रोक तो न पाओगे । मेरा जाना निश्चित है । रो-धोकर तुम यह समय भी बिता दोगे । तिष्य ने ठीक ही किया है । इसने मेरे प्रति अपने प्रेम को ध्यान बना लिया है । यह मेरी वास्तविक पूजा कर रहा है । जो ध्यान के फूल मेरे चरणों में रोज चढ़ाता है, वही मेरी पूजा करता है । ध्यान ही मेरे प्रति प्रेम की कसौटी है । रोओ मत, ध्याओ । मेरी पुरानी जीर्ण वस्तुओं के मोह में मत फँसो, ध्याओ । इस तिष्य को देखो । यह धीर है, प्राज्ञ है, बहुश्रुत है, शीलवान, व्रतसंपन्न, आर्य एवं बुद्धिमान है । इससे सीख लो ।''

सभी भिक्षुओं के हृदय के प्रश्न शांत हो गये थे । जीवन की दिशा उन्हें प्राप्त हुई थी । मोह का अंधकार चीरकर ज्ञानदीप उनके हृदय में प्रज्वलित हो चुका था ।

...तो ब्रह्मचर्य सरल है

संयम और ब्रह्मचर्य

मोहक्षय के लिए मृत्यु की स्मृति : जिस व्यक्ति का रूप हमें मोह करता है उस व्यक्ति के शरीर की नश्वरता का चिंतन करना, यह आसक्ति के वेग को रोकने का एक उपाय है। खुद अपने शरीर का मोह शरीर की ऐसी क्षणभंगुरता का बार-बार स्मरण करके मंद किया जा सकता है। जिसको मृत्यु का सतत स्मरण है वह कामांध होने से सहज ही बच जायेगा।

थोड़े दिन बाद जिसको फाँसी लगनेवाली है, तारीख तय हो चुकी है ऐसे कैदी की दिनचर्या का अवलोकन करने पर देखने को मिलेगा कि अब उसको प्रिय भोजन या विषय विलास जैसे किसी भी विषय में रस नहीं रहा है। मृत्यु के पहले ही मृत्यु की उदासी उसके तन-मन पर छा गयी है। अपनी समझ के अनुसार वह अपने इष्टदेव की उपासना में अपना मन लगा रहा है। खाद्य-वस्तुवाले चूहे के पिंजरे में जब चूहा फँसता है, तब क्या होता है? पिंजरे में फँसा हुआ मृत्यु के भय से भयभीत चूहा पास में पड़ी हुई प्रिय, स्वादिष्ट वस्तुओं को छोड़ घबराकर पिंजरे में से निकलने के तनतोड़ प्रयत्न करता है। खाद्य-पदार्थ के आकर्षण से वह पिंजरे में आया था, परन्तु जहाँ मृत्यु के भय की संभावना देखी तो वह स्वाद की वृत्ति छोड़ अपनी जान बचाने का प्रयत्न करने लगा। इसलिए व्यक्ति अपनी मृत्यु की निरन्तर स्मृति और सामने के संबंधक दृश्य पदार्थों, व्यक्तियों के क्षणभंगुर होने की संवेदना से विजातीय सौन्दर्य के अंध आकर्षण से बच सकता है।

व्यक्ति अपनी मृत्यु की निरन्तर स्मृति और सामने के संबंधक दृश्य पदार्थों, व्यक्तियों के क्षणभंगुर होने की संवेदना से विजातीय सौन्दर्य के अंध आकर्षण से बच सकता है।

शरीर के अन्दर रही अशुचि का बराबर ख्याल करने से भी उससे होनेवाले मोहाकर्षण से बचा जा सकता है। श्रीमद् राजचंद्र एक स्थान पर ब्रह्मचारी को कहते हैं कि 'स्त्री के रूप से मोहित होने से बचने के लिए बिना त्वचा के उसके रूप का बार-बार चिंतन करना चाहिए।' ऐसे सोचा जाय तो रूप में लुब्ध होने की मनोवृत्ति माया के थप्पड़ मारने के बराबर ही लगेगी। जिसके रूप को देखने पर मोह उत्पन्न होता है ऐसे प्रेमपात्र के दोषों को ढूँढ़कर उस तरफ ध्यान देने से भी आकर्षण का बल कम होगा। मोहवश दशा में मानव को सामने के व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व ही अच्छा लगेगा। दोष देखकर मोहाकर्षण घटाने के प्रयोग में अन्य के अवगुणों को देखने का दृष्टिदोष हमारे भीतर आ जाने की पूरी संभावना है। इसलिए विवेकी और सावधान व्यक्ति ही इसका उपयोग करें यही योग्य है। सामनेवाले व्यक्ति के रूप में और जगत की आकर्षक वस्तुओं में 'भगवान ने ये कैसे-कैसे अद्भुत रूप धारण किये हैं !' इस प्रकार आकर्षक रूप में भगवद् दृष्टि रखने से भी रूप के काँटों से, आकर्षण से बचा जा सकता है।

– श्री मलूकचंद शाह

आठ प्रकार के गुरु

सत्संग सरिता

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

गुरु वे हैं जो शिष्य को लघु न रहने दें, लघुत्व से उठाकर गुरुत्व में ले आयें, तुच्छ इन्द्रिय-भोगों से ऊपर उठाकर निर्विकार नारायण तत्त्व में विश्रांति दिला दें ।

आठ प्रकार के गुरु होते हैं :

१) चंदन गुरु : जो स्वयं चंदन की नाईं घिसकर अर्थात् सत्कार्यों के लिए कष्ट सहन करके भी शिष्यों की भलाई करते हैं ।

२) विचारप्रधान गुरु : ऐसे गुरु शिष्यों को सद्विचारों की सुवास देते हैं । अपने सत्संग-प्रवचनों के द्वारा शिष्यों को उत्तम विचार प्रदान कर सन्मार्ग पर ले जाते हैं ।

३) करुणाप्रधान गुरु : जैसे बच्चा चाहे लूला है, लँगड़ा है, लोफर है, कैसा भी है परंतु माँ करुणा करके उसे अपने गले लगा लेती है । इसी प्रकार शिष्य की बुद्धि चाहे मंद है, उसमें योग्यता नहीं है तो भी करुणाप्रधान गुरु उसे ऊपर उठाते हैं ।

४) स्पर्श गुरु : इस प्रकार के गुरु जब शिष्य के सिर पर हाथ रखते हैं या उसे स्पर्श करते हैं तो शिष्य में उनकी शक्ति का संचार हो जाता है । उनका एक प्रकार का संकल्प हो जाता है और शिष्य के मन व विचार बदलने लगते हैं ।

५) चंद्र गुरु : जैसे चंद्र दूर रहकर भी चंद्रकांत मणि को पिघला देता है और शीतलता प्रदान करता है, ऐसे ही जिन गुरुओं की हाजिरी में मन द्रवित हो जाय, अनुशासित हो जाय, सज्जन हो जाय, थकान मिटने लगे, हृदय पुलकित हो जाय तथा शिष्य के जीवन में शीतलता और शांति का साम्राज्य स्थापित हो जाय वे चंद्र गुरु होते हैं ।

६) कूर्म गुरु : जैसे कछवी अपनी दृष्टिमात्र से अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है, ऐसे ही कूर्म गुरु अपनी कृपादृष्टिमात्र से शिष्यों में प्रेम, भक्ति, शक्ति और माधुर्य का संचार कर उनका उत्थान करते हैं ।

७) दर्पण गुरु : जो दर्पण की नाईं शिष्यों की आंतरिक कमियों को देख उन्हें दूर करने हेतु उपदेश देते हैं ।

८) क्रौंच गुरु : क्रौंच पक्षी की मादा अपने अंडे से छः-छः महीने दूर रहकर भी स्मरणमात्र से उसका पोषण करती है, ऐसे ही क्रौंच गुरु स्मरणमात्र से शिष्यों का कल्याण करते हैं तथा उनकी गढ़ाई में सहायभूत होते हैं ।

शिष्य गुरु का स्मरण करे यह स्वाभाविक कार्य गिना जाता है परंतु गुरु अपने शिष्य का स्मरण करने में खो जायें यह तो शिष्य की अगाध श्रद्धा, अनन्य निष्ठा पर ही निर्भर है । शिष्य की गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा, अनन्य निष्ठा तथा पूर्णतः शरणागति रूपी दस्तक गुरु को हृदयरूपी किवाड़ खोलने के लिए मजबूर कर देती है और शिष्य आत्मरस में तृप्त सद्गुरु के हृदय से निःसृत होनेवाली सुधा का पान कर निहाल हो जाता है ।

किसी गुरु में केवल चंदन गुरु जैसी ही योग्यता विकसित होती है । किसीमें केवल विचार गुरु की, किसीमें केवल करुणा गुरु की तो किसीमें केवल स्पर्श गुरु की । कुछ गुरुओं में केवल क्रौंच गुरु या कूर्म गुरुओं जैसी योग्यताएँ विकसित होती हैं लेकिन कुछ गुरु ऐसे होते हैं जिनमें एक साथ ही सात-सात, आठ-आठ प्रकार के गुरुओं की योग्यताएँ विकसित होती हैं । मेरे गुरु पूज्य लीलाशाहजी बापू ऐसे ही सद्गुरु थे । महर्षि वेदव्यासजी ऐसे ही महापुरुष थे । ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष कभी-कभार मिलते हैं, जिनकी शरण लेकर शिष्य अपने 'अहम्' भाव को भूल अपने 'सोऽहम्' स्वभाव में जग जाता है ।

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत न
हरि तो गुरु बिन क्या मिले समझ ले मन मा

गुरु बिन ज्ञान न उपजे...

कनखल (हरिद्वार) के समीप गंगा तट पर यवक्रीत मुनि ने वैदिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए उग्र तप आरंभ किया । उनके कठोर तप को देखकर देवराज इंद्र उनके पास आये और तप का कारण पूछा ।

यवक्रीत ने कहा : ''देववृंदपूजित महेंद्र ! मैं यह उच्चकोटि की तपस्या इसलिए कर रहा हूँ कि द्विजों (ब्राह्मणों) को बिना पढ़े ही सभी वेदों का ज्ञान हो जाय । गुरु के मुख से वेदों का ज्ञान शीघ्र नहीं पाया जा सकता । अतः मैं इस तप के प्रभाव से शीघ्र ही सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ।''

''मुने ! आपने सर्वथा उलटा मार्ग पकड़ा है । अतः जाकर गुरु के मुख से ही ज्ञान प्राप्त करो ।'' यह कहकर इन्द्र चले गये ।

द्विजश्रेष्ठ यवक्रीत ने अपना हठ नहीं छोड़ा और फिर से तपस्या आरंभ कर दी । कुछ समय बाद इन्द्र पुनः आये और बोले : ''मुनिवर ! आपने ऐसा कार्य आरम्भ किया है, जिसकी सिद्धि होनी असंभव है । द्विजमात्र को बिना पढ़े वेदों का ज्ञान हो जाय - आपका यह संकल्प और इसकी पूर्ति के निमित्त यह आयोजन बुद्धि-संगत नहीं है ।'' इस तरह यवक्रीत समझाकर देवराज इन्द्र तो चले गये लेकिन यव मुनि अपनी जिद्द पर अड़े रहे । इस बार उन्होंने अंग-प्रत्यंग काटकर अग्नि में हवन करने का नि किया ।

उनका यह निश्चय जानकर इंद्र एक वृद्ध यक्ष्मा रोगी ब्राह्मण का रूप धारण कर आये और गं जिस स्थान पर यवक्रीत मुनि स्नान करते थे, बालू डालने लगे । एक वृद्ध और दुर्बल ब्राह्मण अंजलि में बालू ले-लेकर गंगा में डालते देख यव ने पूछा : ''विप्रवर ! आप यह क्या कर रहे हैं ?''

ब्राह्मण ने कहा : ''तात ! लोगों को उस पार में कष्ट होता है, इसलिए गंगा पर पुल बाँधना च हूँ ।''

''तपोधन ! आप इस महाप्रवाह को अंज अंजलि बालू से कैसे बाँध सकते हैं ? आप प्रयत्न महान कर रहे हैं परंतु सब व्यर्थ है । इस असंभव को छोड़कर जो हो सके, ऐसा कार्य करने का कीजिये ।''
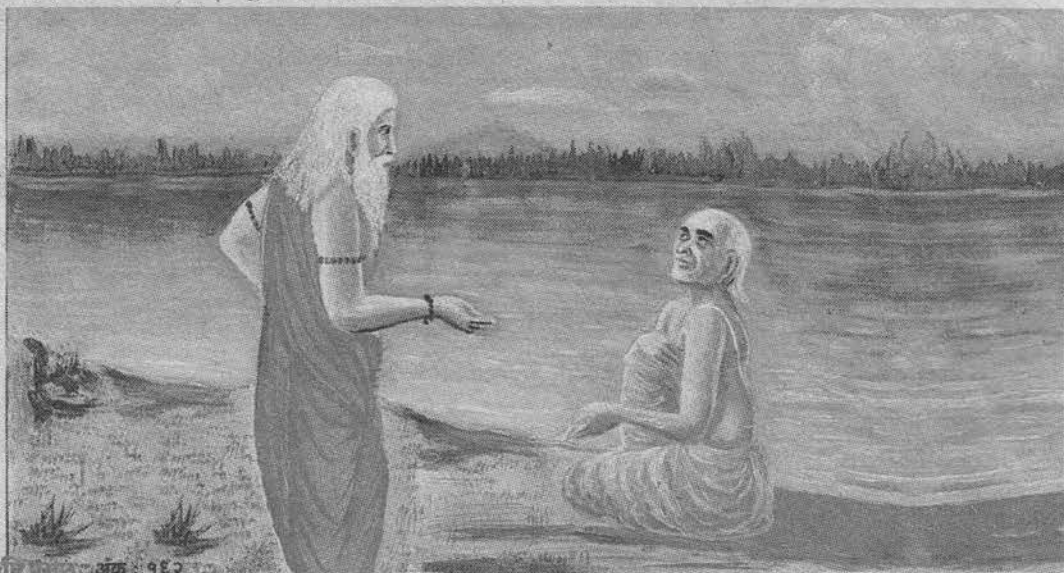
संसार का कार्य भी मार्गदर्शक के बिना नहीं होता, फिर वैदिक ज्ञान, ब्रह्मज्ञान पाना गुरु के बिना कैसे संभव है ?

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा : ''मुने ! जैसे आप बिना गुरु के मात्र तपस्या के बल पर वैदिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, जो कि असंभव है, वैसे ही मैं भी यह कार्य कर रहा हूँ । आप असाध्य कार्य को साध्य कर सकोगे तो मैं क्यों न कर सकूँगा ?''

ब्राह्मण कौन है, यह यवक्रीत समझ गये । उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ । तब उन्होंने बिना गुरु के केवल तप के द्वारा वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का हठ छोड़ दिया ।

गुरुज्ञानरहित तप करने से क्या फर्क पड़ता है ? सद्गुरु-आश्रय व भगवत्प्रेम से विमुख होकर जप करने से क्या फर्क पड़ता है ? फर्क तो तब पड़ता है जब कोई सद्गुरु मिल जायें । फर्क तो तब पड़ता है जब सद्गुरु की सीख दिल में उतर जाय... जन्म-मरण के चक्र में डालनेवाले जो कर्म हैं उन कर्मों का निवारण करनेवाले कोई सद्गुरु मिल जायें... सत्य की झलकें देनेवाले, सत्य के गीत सुनानेवाले सद्गुरु मिल जायें... जिनके सान्निध्य से तुम्हारे जीवन में ज्ञान और वैराग्य निखर आये, जिनके उपदेश से तुम्हारी बुद्धि की मलिनता दूर होकर विवेक-वैराग्य जग जाय !

संसार का कार्य भी मार्गदर्शक के बिना नहीं होता, फिर वैदिक ज्ञान, ब्रह्मज्ञान पाना गुरु के बिना कैसे संभव है ?

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत नाहीं ।
हरि तो गुरु बिन क्या मिले समझ ले मन माहीं ॥

फिर यह तो अनजाना देश है और अनदेखा पिया है । यहाँ मन, बुद्धि, अहं अपना कोई-न-कोई षड्यंत्र करके साधक को उलझा देते हैं ।

अविद्या के कारण जीव मन के गुणों को अपना गुण मानता है, चित्त के गुण-दोषों को अपना गुण-दोष मानता है और अहं को सजाता है । फिर मन के अनुकूल होता है तो सुख होता है, मन के प्रतिकूल होता है तो दुःख होता है । इन्हींसे भिड़ते-भिड़ते जीव बेचारा अपना जीवन खत्म कर देता है ।

शास्त्र कहते हैं : **'तस्मात् गुरु अभिमुखात् गच्छेत् ।'** 'इसलिये गुरु के अभिमुख जाओ ।'

अन्यथा ये माया एवं अहं तुम्हें कहीं-न-कहीं भटका देंगे और गुरु भी कैसे हों ? श्रोत्रिय... ब्रह्मनिष्ठ... जिन्हें शास्त्रों का ज्ञान हो, अविद्या को भगाने का एवं राग-द्वेष को मिटाने का जिन्हें अनुभव हो, जो परमात्मा में प्रतिष्ठित हों, ऐसे गुरु की खोज करो और जो ऐसे गुरुओं की शरण में आ जाते हैं, उनका जीवन महक उठता है...

जब चाहूँ तुम्हारा दीदार देना...

हे प्रभु ! हमें बस इतना ही प्यार देना,
जब चाहूँ तुम्हारा दीदार देना ।
हमको देना सिर्फ भक्ति तुम्हारी,
माँगने पर भी नहीं संसार देना ॥
तुम्हारे सिवा नहीं कोई अपना,
दिल में सच्चा एतबार देना ।
लगती हो कड़वी भले ही हमें,
प्रभु तेरी मीठी फटकार देना ॥
देना ऊपर-ऊपर से फटकार,
अंदर से सच्चा प्यार देना ।
सदा अपने दिल में रखना हमें,
नहीं दिल से कभी धिक्कार देना ॥
स्वर्ग का सुख भी फीका पड़ जाय,
ऐसा सत्संग बारंबार देना ।
तेरे चरणों में बीते जीवन हमारा,
तेरी सेवा का अधिकार देना ॥
राग-द्वेष रहे ना किंचित्,
शुद्ध सरल व्यवहार देना ।
कोई चाह रहे न नश्वर,
आत्मानंद अपार देना ॥
सदा ज्ञानमय हो जीवन,
वृत्ति ब्रह्माकार देना ।
आठों प्रहर आनंद बरस रहा,
प्रभु ! सच्चा तेरा दरबार देना ॥

- जीवन सिंह राजपूत,
अमदावाद ।

सहज वाणी

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

इस देश का इतिहास देख लो । जब-जब संतों की शिक्षा के अनुसार इस देश के राजा और प्रजा चले, तब-तब इस देश की कीर्ति, धन्य-धान्य और समृद्धि उन्नति के शिखर पर पहुँची तथा ज्यों ही संतों की शिक्षा की अवहेलना हुई, राष्ट्र पतन के गर्त में आ गिरा, इस पर आक्रमण हुए और पुनः सँभलने में शताब्दियाँ लग गयीं ।

इसी देश में १००-१०० लोगों के परिवार में सभी लोगों का एक ही चूल्हे पर भोजन बनता था, इतनी आपस में एकता थी, आत्मीयता थी और आज दो भाई भी, यहाँ तक कि कोई-कोई पति-पत्नी भी एक चूल्हे पर भोजन नहीं पका पाते । हम मनुष्य-मनुष्य की एकता की बात करते हैं परंतु यहाँ तो पिता-पुत्र में एकता नहीं, बहन-भाई में एकता नहीं, पति-पत्नी में एकता नहीं, माता-पिता में एकता नहीं । विदेश में तो आँकड़े, विशेषकर अमेरिका के, हर चार व्यक्तियों में तीन व्यक्ति को विक्षिप्त, अशांत बताते हैं । इतनी विक्षिप्तता, इतनी अशांति आज के युग में आयी कहाँ से ?

आज मनोरंजन के साधन बढ़े हैं । इस देह क[illegible] सुखी बनाने के लिए रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन सोफासेट, फ्रिज, एयर कन्डीशंड बँगले और भी [illegible] जाने क्या-क्या आधुनिकतम ढंग के साधन मनुष्य क[illegible] आज उपलब्ध हैं, फिर भी मनुष्य अशांत नजर आ रह[illegible] है । ऐसा क्यों है ? क्योंकि मनुष्य भीतर से अशांत है [illegible] अशांति में से जो क्रिया उपजेगी वह शांति कैसे [illegible] सकती है ?

जिन्होंने भीतर की परम शांति को पा लिया[illegible] अपने भीतर परम शांतस्वरूप में गोता लगा दिया ए[illegible] उसमें डूबकर जनहित के लिए बाहर आ गये - ऐ[illegible] महापुरुष ही संत होते हैं और उनके मार्गदर्शन द्वारा ह[illegible] समाज अपनी सच्ची एकता तथा शांति प्राप्त क[illegible] सकता है । वे संत उस सत्पद में स्थित होते हैं, जह[illegible] वाणी की गति नहीं ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

(तैत्तिरीयोपनिषद् : २.९

इसीलिए ऐसे संतों की कई क्रियाएँ बड़ी अटपट[illegible] होती हैं, जनसाधारण की समझ में नहीं आतीं पर[illegible]
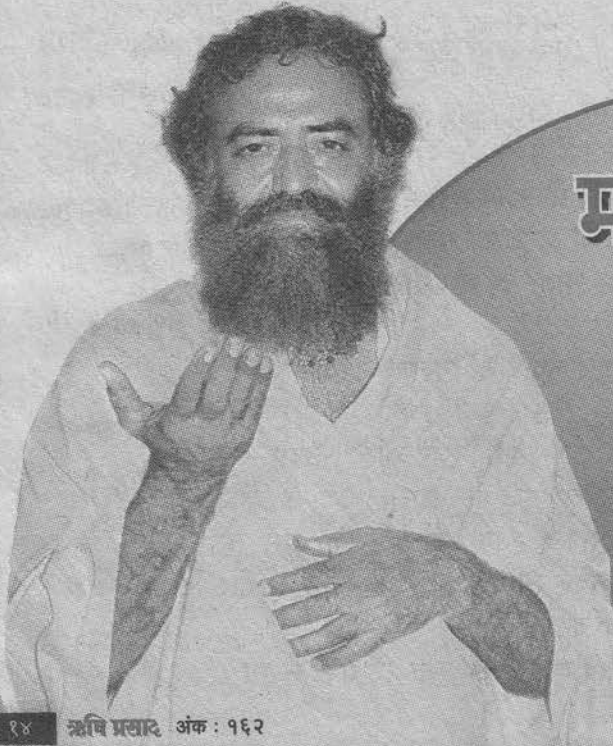
उनकी कोई बात मानकर तो देखो !

मनुष्य की सारी दौड़ आखिर किसलिए है ? दफ्तर में हो कि दुकान में, घर में हो कि जंगल में, बाजार में हो कि एकांत में, मनुष्य का सारा कार्य-व्यापार किसे पाने के लिए ही हो रहा है ?

उनमें बड़ा राज छिपा होता है । संतों की बात में बड़ा रहस्य होता है :

ज्यों केले के पात में, पात पात में पात ।
त्यों संतन की बात में, बात बात में बात ॥

एक पेड़ में फूल हैं, कलियाँ हैं तथा पत्ते भी हैं और मानो कि ये आपस में लड़ रहे हैं, एक-दूसरे को नष्ट करने पर तुले हुए हैं । इनको इतना एक-दूसरे से द्वेष करते, तू-तू, मैं-मैं करते और झगड़ा करते देखकर कोई भी समझदार व्यक्ति इनकी मूर्खता पर हँस पड़ेगा, क्योंकि वह जानता है कि ये सब एक ही पेड़ के अंग हैं । दिखने में अलग-अलग रंग-रूप हैं इनके, ये छोटे-बड़े दिखते हैं, कोई पहले से है तो किसीका बाद में जन्म हुआ है, कोई लटका हुआ लगता है तो कोई खिला हुआ लगता है परंतु समझदार व्यक्ति जानता है कि ये सब विभिन्नताएँ होते हुए भी ये सब एक ही वृक्ष के अंग हैं । एक ही जीवनधारा, एक ही जीवनरस इनमें बह रहा है, एक-दूसरे की उन्नति में ही इन सबकी उन्नति है और इसलिए वह व्यक्ति इनको मूर्ख समझेगा तथा इनकी मूर्खता पर हँसेगा । यदि यही समझ इन फूल-पत्तों को भी आ जाय तो वे भी पूर्व समय में की गयी अपनी मूर्खता पर हँसे बिना नहीं रहेंगे कि 'अरे, हमने अब तक इतना समय व्यर्थ ही खोया !'

क्या हम भी उन फूल-पत्तों के ही सगे भाई नहीं हैं ? क्या हम भी उन्हींकी तरह अपना अमूल्य समय व्यर्थ नहीं खो रहे हैं ? अपने पिछले बीत चुके जीवन में झाँककर देखें कि अब तक क्या उपलब्धि की है हमने ? जो भी आज तक हमने पाया है, वह सार्थक है कि व्यर्थ है ?... अब तक हमने ठीकरे और पत्थर ही इकट्ठे किये हैं । जो भी हमने इकट्ठा किया है और करते जा रहे हैं, वह एक दिन इस शरीर के साथ छूट जायेगा - यह ठोस सत्य है । आज तक हमने अड़ोसी-पड़ोसी की बातें मानी हैं, मित्रों की बातें मानी हैं, माता-पिता और पत्नी-बच्चों की बातें मानी हैं, नेताओं की बातें मानी हैं परंतु क्या पाया ? कौन-सा धन इकट्ठा किया ? सब नश्वर, टूटने-फूटनेवाला, बिखरनेवाला, राग-द्वेष बढ़ानेवाला, झगड़े करानेवाला, समाज में अशांति फैलानेवाला या और कुछ ? और अब एक बार तुम संत की बात मानकर देखो ! अरे, संत तुम्हें वह अखूट खजाना दिला देंगे कि किसी और खजाने को पाने की जरूरत ही नहीं रहेगी । वह खजाना जो कि अखूट है, अभंग है, अविनाशी है, समस्त सुखों का सार है, जिसे कोई लूट नहीं सकता और तुम लुटाओ तो कभी खूटेगा नहीं, ऐसा खजाना है वह... और उसे कहीं लेने भी नहीं जाना है । वह तुम्हारे भीतर है परंतु तुम्हारी उधर दृष्टि ही नहीं है । अतः एक बार किसी संत की, किसी अलमस्त फकीर की बात तो मानकर देखो ।

हम संसार के तुच्छ सुखों को ही सुख मान बैठे हैं, संसार की विषयरूपी शराब पीकर ही सुखी होना चाहते हैं परंतु आज तक सुखी नहीं हो पाये और नहीं हो पायेंगे । संसार के विषय तुम्हें कभी सच्चा सुख नहीं दे पायेंगे ।

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा ?
रात बीती, सुबह को उतर जायेगी ॥
उसकी नजरों से दो घूँट पीकर तो देखो ।
सारी जिन्दगी नशे में गुजर जायेगी ॥

संत की अमृतभरी नजर में वह जादू है कि वह तुम्हारे भीतर के सोये हुए आनंद को जगा देगी ।

नूरानी नजरें सां दिलबर दरवेशन्
निहाल करे छडयो ।

संत की नूरानी नजर तुम्हें निहाल कर देगी । जरा तुम एक बार खाली हृदय, अहंकार से शून्य सरल हृदय लेकर उनके पास तो जाओ, उनका संग तो करो, उनकी कोई बात मानकर तो देखो !

मन मते सब कोई चाले, संत मते कोई सूरमा ।

इस देह को सुखी बनाने के लिए रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, सोफासेट, फ्रिज, एयर कन्डीशंड बँगले और भी न जाने क्या-क्या आधुनिकतम ढंग के साधन मनुष्य को आज उपलब्ध हैं, फिर भी मनुष्य अशांत नजर आ रहा है । ऐसा क्यों है ?

सहज वाणी

मन के कहे में, लोगों के कहे में चलकर तो देख लिया अब तक, अब एक बार संत के कहे में चलकर तो देखो । तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा । सच पूछो तो अभी तुम्हारे पास बिगड़ने को है ही क्या ? जो कुछ है सबमें से बिगड़ने की बू आ रही है ।

मन के कहे में, लोगों के कहे में चलकर तो देख लिया अब तक, अब एक बार संत के कहे में चलकर तो देखो । तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा । सच पूछो तो अभी तुम्हारे पास बिगड़ने को है ही क्या ? जो कुछ है सबमें से बिगड़ने की बू आ रही है । कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें से शाश्वतता का स्वर सुनायी पड़ता हो ।

यह जितना माल खजाना है
और तुमने अपना माना है ।
सब छोड़ अकेला जाना है,
करता है इकट्ठा क्या बाबा !

तो अपने शेष बचे जीवन में से कुछ समय का एक जुआ और खेल लो । यह खेल खेलने जैसा है क्योंकि संत तुम्हारे भीतर ही सुप्त पड़े शाश्वत से तुम्हारी मुलाकात करा देंगे । तुम अपने ही घर में अपना घर खोये बैठे हो । स्वामी रामतीर्थ के भीतर जब उस शाश्वत का स्वर बजा तो वे इतने आनंदमग्न हो गये कि बोले पड़े : **''मैंने जो किया ऐसा कोई अंधा भी नहीं करेगा । अपने घर में ही खो बैठा था अपने घर धणी (स्वामी) को !''**

जिस-जिसने भी भीतर इस परम एकता का स्वर सुना है, उसने ऐसा ही अनुभव किया है ।

मनुष्य की यह सारी दौड़ आखिर किसलिए है ? उस परम एकतारूपी सच्चे घर को पाने के लिए ही तो ! दफ्तर में हो कि दुकान में हो, घर मैं हो कि जंगल में हो, बाजार में हो कि एकांत में हो, मनुष्य का सारा कार्य-व्यापार जन्म से लेकर मौत तक उसी परम सुख को पाने के लिए ही होना चाहिए।

कोई ऐसे महापुरुष जिनके भीतर उस सच्ची एकता का - परम एकता का स्वर गूँज उठा हो, जिनके सान्निध्य से उस परम एकता की सुगंध महसूस होती हो, उनका मार्गदर्शन मिल जाय तो यह सारी दौड़ समाप्त हो जाय ।

विश्व, समाज, भगवान व स्वयं की सेवा कैसे करें ?

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

अपने जीवन में देवत्व जगाना है तो तन से, मन से, वाणी से किसीकी बुराई न हो - इसकी सावधानी रखें । बुराईरहित होने से विश्व की सेवा हो जायेगी जबकि बुराईवाला तो संसार की सेवा लेगा; बुराईरहित होगा तो संसार का बुरा करेगा नहीं फिर तो उसके द्वारा भला ही होनेवाला है । व्यसन बुराई है, दूसरे का शोषण करना बुराई है, दूसरे से कपट करना बुराई है । जब कपट नहीं करेगा तो अच्छा व्यवहार ही होगा न ? गंदा नहीं खायेगा तो सात्त्विक भोजन ही करेगा न ?

तन से, मन से, वाणी से, कर्म से बुराईरहित होने से ही विश्व की सेवा हो जाती है । यथाशक्ति किसीके काम आना, क़िसीकी भलाई करना यह समाज की सेवा हो गयी और उसके फल की इच्छा छोड़ दी तो अपनी सेवा हो गयी । फिर अपने-आप आत्मसंतोष होगा, भगवद्-शांति, भगवद्-ज्ञान मिलेगा।

स्वार्थरहित, फल की इच्छा से रहित जितनी सेवा होती है, वह अपनी ही सेवा होती है । इससे अपना ही बल बढ़ता है, अपनी ही बुद्धि बढ़ती है । स्वार्थरहित, लोभरहित, कामनारहित हो दूसरों की भलाई के लिए काम करने से अंदर भगवत्शक्ति काम करती है और भगवान को प्रीति करने से भगवान की सेवा हो जाती है । अब तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू आ गये । देवत्व से भी पार ब्रह्मत्व में पहुँच जाओगे । केवल इरादा पक्का कर लो कि नकली सुख नहीं चाहिए, नकली संतोष नहीं चाहिए, असली सुख चाहिए, असली आत्मसंतोष चाहिए ।

संत महिमा
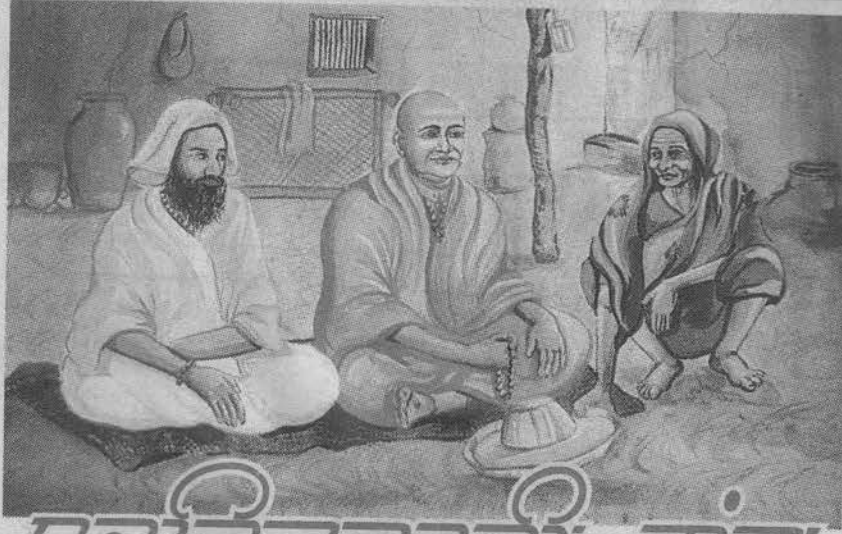
परहितकारी संत

अपने कल्याण के लिए तुम उपवास करके अंदर बैठे रहो इतना सारा तुम्हारे कल्याण के लिए । इन लोगों का कल्याण नहीं करना है तुम्हें ? उसके यहाँ जाकर टुकड़ा खाने से उसका कल्याण होता है न ? अपनेको ऐसा भी करना पड़े न ?

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

साबरमती तट पर लालजी महाराज के गुरु स्वामी माधवतीर्थजी का आश्रम है । वे महापुरुष हयात थे उस समय की बात है ।

एक दिन लालजी महाराज ने बाहर एकांत में जप-तप करने का निश्चय किया । आश्रम में संचालक को कहके गये कि 'मैं अभी जाता हूँ । रात को चंद्र-दर्शन करके ही कुछ लूँगा । मुझको कोई खोजे-बोजे नहीं, आज मेरा उपवास है ।'

दोपहर हुई तो गुरुजी ने उन्हें बुलाया : ''कहाँ है लालजी ?''

संचालक ने कहा : ''वे तो ध्यान-भजन करने गये हैं और चंद्र-दर्शन करने के बाद ही भोजन करेंगे ।''

माधवतीर्थजी ने लालजी महाराज को बुलाकर कहा : ''चलो मेरे साथ, एक माई के यहाँ भोजन करने जाना है ।''

अब गुरुजी को पता है फिर भी बोल रहे हैं, 'भोजन करने चलो ।' गुरुजी ने कह दिया तो क्या करें लालजी महाराज बेचारे ! गये उस बुढ़िया के पास जहाँ आमंत्रण था ।

''अच्छा महाराज ! आ गये, ठीक है ।'' बुढ़िया बोली । उसने जो टाट भैंस की पाड़ी को ओढ़ाया था, वही टाट झाड़ा और बिछा दिया । उसमें गोबर आदि लगा था ।

माधवतीर्थजी महाराज और लालजी महाराज बैठे । माधवतीर्थ महाराज अपनी समता में मस्त थे । लालजी महाराज तो देखते ही रहे । नये लोग होते हैं तो देखने की आदत होती है । देखनेवाला तो देखता ही है ।

थोड़ी देर हुई, माई ने एक थाली रख दी । थाली के ऊपर एक कटोरा था । माधवतीर्थजी ने थाली पर से कटोरा हटाया तो अंदर एक रोटी रखी हुई थी । महाराज ने उस रोटी के दो टुकड़े किये । आधी रोटी लालजी महाराज को दी और आधी खुद खायी । रोटी खा के चले । पैदल-पैदल आश्रम में आना था । माधवतीर्थजी महाराज तो आत्मरामी थे । उनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं, कोई फरियाद नहीं, कुछ नहीं, खूब शांति ।

''बापूजी ! उसके यहाँ...'' लालजी महाराज इतना ही बोल पाये थे कि माधवतीर्थजी बोले : ''अरे ! अपने कल्याण के लिए तुम उपवास करके अंदर बैठे रहो इतना सारा तुम्हारे कल्याण के लिए । इन लोगों का कल्याण नहीं करना है तुम्हें ? उसके यहाँ जाकर टुकड़ा खाने से उसका कल्याण होता है न ? अपनेको ऐसा भी करना पड़े न ?''

अपने आश्रम की बनी-बनायी रसोई छोड़ के उस श्रद्धालु बुढ़िया का टुकड़ा खाया । कितने दयालु संत ! लोगों का कल्याण करने के लिए क्या-क्या करते हैं !

चातक, मीन, पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाय
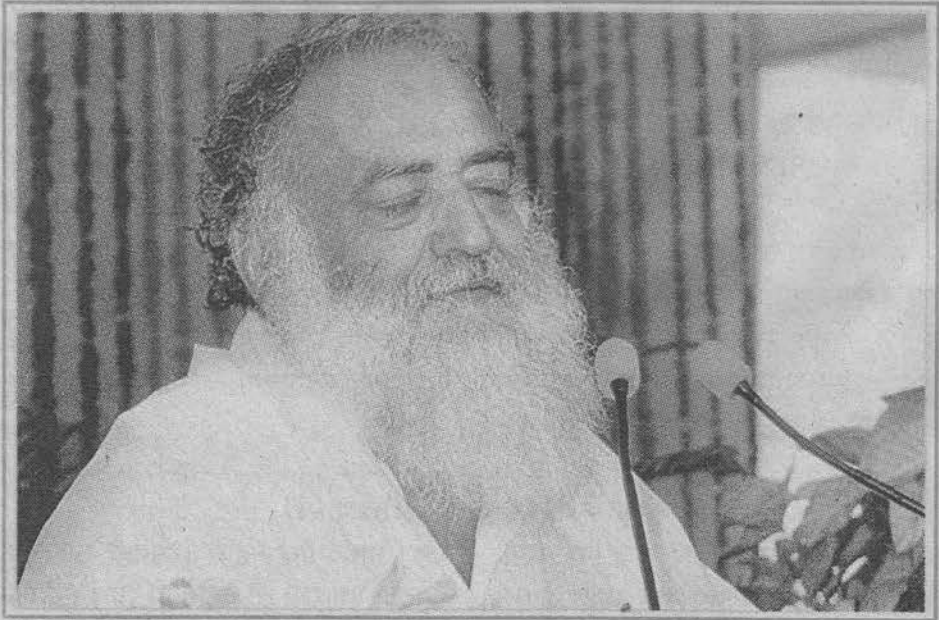
भगवत्प्राप्ति के विविध उपाय

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य ही परमात्म-साक्षात्कार करना है । कलियुग में परमात्मप्राप्ति के लिए वे साधन, वातावरण तथा शरीर नहीं हैं, पहले जैसी योग्यता नहीं है तो साधन भी सरल हैं। इस कलिकाल में भी परमात्मप्राप्ति के विविध उपाय हैं :

श्रद्धा : सात्त्विक श्रद्धा होगी तो श्रद्धेय की तरफ से हमारे उत्थान के लिए चाहे कैसी भी कसौटी हो, कैसा भी व्यवहार हो, साधन-भजन की कैसी भी पद्धतियाँ हों साधक फरियाद नहीं करेगा, उसकी प्रतिक्रिया नहीं होगी । शास्त्र और भगवत्प्राप्त महापुरुष पर श्रद्धा होने से शीघ्र ही ईश्वरप्राप्ति हो सकती है । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के, तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शांति को प्राप्त हो जाता है ।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : ४.३९)

प्रेम : भगवान में प्रेम हो जाय तो बेड़ा पार हो जायेगा । सत् की प्रीति से सत्स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है । अतः भगवान में प्रीति बढ़ाओ । भगवान को अपना मानो । जहाँ प्रेम होता है, वहाँ परिश्रम का ख्याल नहीं आता । जहाँ प्रेम नहीं होता, वहाँ थोड़ा-सा काम भी बोझा लगता है ।

वैराग्य : संसार के पदार्थों में, संसारी भोगों में राग नहीं होने से परमात्मा की प्राप्ति शीघ्र होती है ।

समता : प्राणिमात्र में समभाव होना चाहिए, सबसे सम व्यवहार करना चाहिए ।

एक ही माँ के बच्चे हैं हम, एक ही पिता हमारा है ।
कर लो जगत में स्नेह सभीसे, कोई नहीं पराया है ।

समता सबसे बड़ा सद्गुण है । ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि विपरीत परिस्थिति में भी समता बनी रहे । सुख-दुःख में सम रहने का अभ्यास करो ।

साध्य को पाये बिना, साधक क्यों रह जाय ?

सत्संग : नित्य सत्संग करो । संत-महात्माओं के सान्निध्य में जाने का अवसर मिले तो ठीक है, नहीं तो सत्शास्त्रों का अध्ययन करो । जैसे रोज स्नान करना चाहिए, रोज खाना-पानी चाहिए, ऐसे ही रोज सत्संग करना चाहिए ।

समय : समय बीता जा रहा है । कहीं समय व्यर्थ तो नहीं होता इसकी सावधानी रखो । जो समय को बरबाद करता है, समय उसको बरबाद कर देता है । इसलिए समय का सदुपयोग करो । सत् एक परमात्मा है । परमात्मा के लिए समय का उपयोग करो ।

दया : अपने चित्त में दया रखो । दया धर्म का मूल है । दया का सद्गुण विकसित होने से शीघ्र ही कल्याण होता है ।

प्रतीक्षा नहीं समीक्षा : भगवान की कृपा या भगवान की दया की समीक्षा करो, प्रतीक्षा मत करो । सुख मिलता है तो उसकी दया है, विरोध और दुःख मिल रहा है तो भी उसकी दया है । आसक्ति छुड़ाने के लिए कोई भी घटना घटती है । इस प्रकार भगवान की दयालुता का दर्शन करो ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।

'मेरा भक्त मुझको सम्पूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शांति को प्राप्त होता है ।' **(गीता : ५.२९)**

जो हो गया अच्छा हुआ, जो हो रहा है अच्छा है, जो होगा वह भी अच्छा होगा - यह यकीन करके भगवान को प्रीति करता चला जा और सभीमें भगवान की दया देखता चला जा । भगवत्प्राप्ति में, विवेक को मजबूत करने में भगवान की दया का दर्शन सहायक साधन है ।

सत्य : सत्य का आचरण करें । सत्य बोलना बड़ा हितकारी है । झूठ-कपट और बेईमानी से थोड़ी देर के लिए लाभ दिखता है, अंततोगत्वा दुःख-ही-दुःख होता है । सत्य के आंचरण से भगवान जल्दी रीझते हैं; भक्ति, ज्ञान और योग में बरकत आती है एवं अंतःकरण जल्दी शुद्ध होता है । जैसे गुलाब पृथ्वी में से अलग गंध ले लेता है और चम्पा अपनी गंध ले लेता है, ऐसे ही आपका अंतःकरण जैसा होगा, विशाल वातावरण में से वैसी चीज आपकी ओर आकर्षित होकर आयेगी । आपके अंतःकरण में सच्चाई है तो सत्पुरुषों के, परमात्मा को पाये हुए महापुरुषों के तरंग आपके अंतःकरण को और उन्नत करेंगे । अंतःकरण शुद्ध होगा तो ध्यान जल्दी लगेगा, ज्ञान की बात जल्दी समझ में आयेगी, महापुरुषों के उपदेश को झेलने की बुद्धि मिल जायेगी ।

मन को वश में रखना : अर्थात् मन को विषय-विकारों में भटकने न देना; विवेक से उसको मोड़ते रहने का अभ्यास करना । इसके लिए जीवन में कोई व्रत व नियम ले लेना चाहिए ।

जैसे प्राचार्य के पद पर आकर कोई बोले कि 'मैं प्राचार्य नहीं बन सकता हूँ' तो वह पागल है, ऐसे ही मनुष्य-शरीर मिलने के बाद भी 'मैं भगवान को नहीं पा सकता हूँ' ऐसा सोचनेवाला उससे भी ज्यादा पागल है ।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है :

असंयतात्मना योगो
दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता
शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

'जिसका मन वश में किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और वश में किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से उसका प्राप्त होना सहज है - यह मेरा मत है ।' **(गीता : ६.३६)**

चित्त को शांत रखने का अभ्यास : चित्त को शांत रखने का अभ्यास करें । रोज ध्यान-भजन करने के बाद कुछ देर शांत बैठें । कार्य के पहले और कार्य पूरा होने के बाद भी थोड़ा शांत हो जायें । शांति अनिवार्य आवश्यकता है । कार्य के पहले भी विश्रांति होती है और कार्य के बाद भी विश्रांति होती है ।

(क्रमशः)

गुरुसेवा का प्रसाद

बालभक्त नाभाजी

बीच समुद्र में जोरदार तूफान उठा और उसका जहाज डूबने लगा । शिष्य ने अंत में सब ओर से निराश होकर मनोमन गुरुदेव से प्रार्थना की । उसने भगवान श्रीरामजी से निवेदन किया और शीघ्र ही जहाज किनारे पर आ लगा ।

जयपुर में 'गलता तीर्थ' नामक एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है । यहाँ श्री कृष्णदास पयहारीजी महाराज विख्यात संत हो गये । उनके दो प्रधान शिष्य थे श्री कीलदासजी और श्री अग्रदासजी । एक बार ये दोनों गुरुभाई किसी जंगल से गुजर रहे थे । एक पेड़ के नीचे विश्राम करने को रुके । तभी उन्हें किसी बालक के रोने की आवाज सुनायी पड़ी । उन्होंने देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक बच्चा रो रहा है । वे उस अनाथ बालक को उठाकर गलताजी ले आये और उसका नाम रखा नारायणदास । गुरु अग्रदासजी से उस बालक ने दीक्षा ली और आश्रम में रहकर सेवा-सुश्रूषा करने लगा । वह सुबह जल्दी उठ जाता और गायों को चारा-पानी देता, दूध दुहता तथा गुरुभाइयों के लिए भोजन बनाता । आश्रम में आनेवाले साधु-महात्माओं का स्वागत-सत्कार करता । आश्रम की सभी प्रकार की सेवा वह बड़े प्रेमपूर्वक व उत्साह से करता था । रात को गुरुदेव की पगचंपी करते-करते उनके चरणों के समीप सो जाता । यही उसकी दिनचर्या थी । अपने मधुर स्वभाव के कारण कुछ ही समय में वह सभीका स्नेह-भाजन बन गया ।

जब वह सात वर्ष का था, तब एक महत्त्वपूर्ण घटना उसके जीवन में घटी । एक दिन गुरु अग्रदासजी भगवान की मानस-पूजा में तल्लीन थे और बालक नारायणदास उन्हें पंखा झल रहा था । उस समय गुरु अग्रदासजी का एक वणिक शिष्य जहाज में माल भरकर समुद्र पार कर रहा था । बीच समुद्र में जोरदार तूफान उठा और उसका जहाज डूबने लगा । शिष्य ने अंत में सब ओर से निराश होकर मनोमन गुरुदेव से प्रार्थना की । शिष्य की करुणाभरी पुकार सुनकर गुरु अग्रदासजी का हृदय क्षुभित हो उठा । नारायणदास गुरुदेव के मन की वेदना को समझ गया । उसने भगवान श्रीरामजी से निवेदन किया और शीघ्र ही जहाज किनारे पर आ लगा । तब नारायणदास ने श्रीगुरुचरणों में नमित होते हुए कहा : ''गुरुदेव ! आपकी कृपा से उसका जहाज किनारे आ गया है । अब आप अपनी पूजा निर्विघ्न समाप्त करें ।''

गुरु अग्रदासजी चौंके, बोले : ''मेरी नाभि की बात तुझे कैसे पता चल गयी ?''

बालक बोला :''गुरुदेव ! गुरुजनों की सेवा व प्रसाद से मैं यह बात जान सका ।''

गुरु अग्रदासजी का हृदय प्रसन्नता से छलक उठा । वे बोले : ''वत्स ! मैं तेरी गुरुभक्ति से संतुष्ट हूँ । तूने आज मेरी नाभि की बात जान ली, अतः आज से लोग तुझे 'नाभाजी' के नाम से जानेंगे । इस सिद्धि का उपयोग तू लोकहित में करना । पूर्वकाल में जो संत हो गये हैं उनके जीवन-चरित्र समाजोद्धारक एवं बहुत ही प्रेरणादायी हैं । अतः इस सिद्धि द्वारा तू उन सबका चरित्र लिखना ।''

गुरुजी की आज्ञा नाभाजी ने शिरोधार्य की और उनके द्वारा जो महान उपदेशप्रद, रसमय ग्रंथ निर्मित हुआ उसका नाम पड़ा 'भक्तमाल' ।

स्नान किये बिना, गायत्री आदि मंत्रों का जप किये बिना, देवताओं को अर्पण किये बिना, गुरु, माता, पिता, अतिथि तथा अपने आश्रितों को भोजन कराये बिना, अपने से प्रेम न करनेवाले व्यक्ति द्वारा बनाया या परोसा गया, उत्तर (या पूर्व) की ओर मुख किये बिना, जूठे मुख से, अपवित्र पात्रों में, अनुचित स्थान पर, असमय, हाथ-पैर-मुँह धोये बिना, बिना इच्छा के या उदास मन से, परोसे गये अन्न की निंदा करते हुए भोजन नहीं करना चाहिए ।

(चरक सूत्रस्थान : ८.२०)

नौ योगीश्वरों के उपदेश

(गतांक से आगे)

राजा निमि ने पूछा : महर्षिजी ! इस भगवान की माया को पार करना उन लोगों के लिए तो बहुत ही कठिन है, जो अपने मन को वश में नहीं कर पाये हैं । अब आप कृपा करके यह बताइये कि जो लोग शरीर आदि में आत्मबुद्धि रखते हैं तथा जिनकी समझ मोटी है, वे भी अनायास ही इसे कैसे पार कर सकते हैं ?

अब चौथे योगीश्वर प्रबुद्धजी बोले : राजन् ! स्त्री-पुरुष-संबंध आदि बंधनों में बँधे हुए संसारी मनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिए बड़े-बड़े कर्म करते रहते हैं । जो पुरुष माया के पार जाना चाहते हैं, उनको विचार करना चाहिए कि उनके कर्मों का फल किस प्रकार विपरीत होता जाता है । वे सुख के बदले दुःख पाते हैं और दुःख-निवृत्ति के स्थान पर दिनोंदिन दुःख बढ़ता ही जाता है । एक धन को ही लो, इससे दिन-पर-दिन दुःख बढ़ता ही है, इसको पाना भी कठिन है और यदि किसी प्रकार मिल भी जाय तो आत्मा के लिए तो यह मृत्युस्वरूप ही है । जो इसकी उलझनों में पड़ जाता है, वह अपने-आपको भूल जाता है । इसी प्रकार घर, पुत्र, स्वजन-संबंधी, पशुधन आदि भी अनित्य और नाशवान ही हैं । यदि कोई इन्हें जुटा भी ले तो इनसे क्या सुख-शांति मिल सकती है ? इसी प्रकार जो मनुष्य माया से पार जाना चाहता है, उसे यह भी समझ लेना चाहिए कि मरने के बाद प्राप्त होनेवाले लोक-परलोक भी ऐसे ही नाशवान हैं । क्योंकि इस लोक की वस्तुओं के समान वे भी कुछ सीमित कर्मों के सीमित फलमात्र हैं । वहाँ भी पृथ्वी के छोटे-छोटे राजाओं के समान बराबरवालों से होड़ अथवा लागडाँट रहती है, अधिक ऐश्वर्य और सुखवालों के प्रति छिद्रान्वेषण तथा ईर्ष्या-द्वेष का भाव रहता है, कम सुख और ऐश्वर्यवालों के प्रति घृणा रहती है एवं कर्मों का फल पूरा हो जाने पर वहाँ से पतन तो होता ही है । उसका नाश निश्चित है । नाश का भय वहाँ भी नहीं छूट पाता । इसलिए जो परम कल्याण का जिज्ञासु हो, उसे आत्मसाक्षात्कारी गुरुदेव की शरण लेनी चाहिए । गुरुदेव ऐसे हों, जो शब्दब्रह्म-वेदों के पारदर्शी विद्वान हों, जिससे वे ठीक-ठीक समझा सकें और साथ ही परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी भी हों, ताकि अपने अनुभव के द्वारा प्राप्त हुई रहस्य की बातों को बता सकें ।

(क्रमशः)

(पृष्ठ ५ का शेष)

जो कुछ भी मिलेगा वह छूट जायेगा । जो कुछ भी आज तक मिला है और आज के बाद जो भी मिलेगा वह मृत्यु के एक झटके में छूट जायेगा । परंतु साधक ! तेरा साध्य परमात्मा है, उसे मृत्यु का बाप भी तुझसे छुड़ा नहीं सकता ।

अपनेको परमात्मा से दूर या उसकी प्राप्ति के अयोग्य, अनधिकारी न मानो । परमात्मप्राप्ति में निराशा के विचार न आने दो । साधक साध्य की प्राप्ति करने में समर्थ है, साधक साध्य की प्राप्ति में स्वाधीन है।

२. साधन में तत्परता लायें । जैसे व्यापारी हर बारह महीने में अपने बही-खाते देखता है और जिस काम-धंधे से मुनाफा हुआ, उसे बढ़ाता है तथा जो चीज नहीं चली या घाटे में रही, उसको कम करता है, बंद करता है - ऐसे ही साधक बारह महीने में एक बार गुरुपूनम के निमित्त गुरु के नजदीक आकर साधन से अपनी जो-जो उपलब्धियाँ हुईं या ऊँचाई आयी, उसको भी जान ले और जिन कारणों से रुकावटें आयीं उनको भी जान ले तथा नया सूत्र लेकर जाय इसलिए गुरुपूनम का उत्सव होता है।

प्रसंग माधुरी

नानकजी कहते हैं : ...अजूनी सैभं गुर प्रसादि
जिसका माता की योनि से जन्म नहीं होता तथा जो स्वयं
अर्थात् स्वाश्रयी है, वह परमात्मा गुरु-प्रसादी से प्राप्त होता है
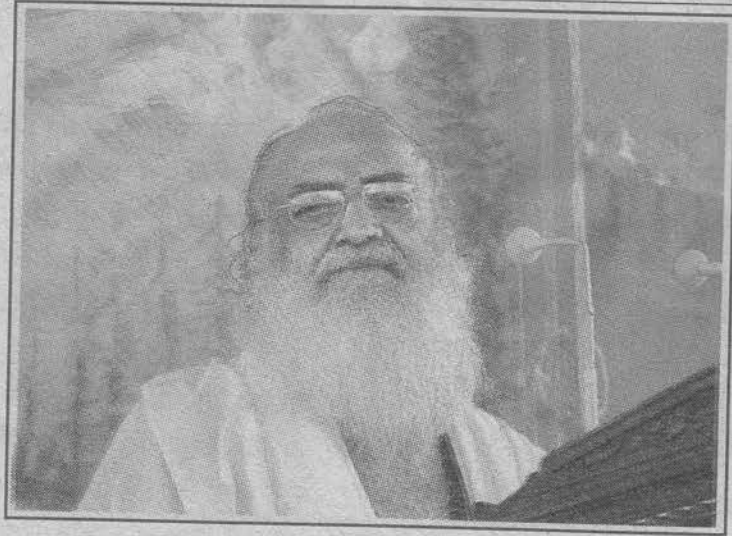
ब्रह्माजी भी धोखा खा गये !

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

परमात्मा और जीव के बीच जीव का अहंकार ही बाधा है, वही पर्दा है । मनमुख योगी योग करके भी अहंकार का विसर्जन नहीं कर पाता । 'मैंने योग किया, मैं इतना बड़ा योगी' इस रूप में अहंकार अपनेको बनाये रखता है । मनमुख जपी - 'मैंने इतने जप किये', मनमुख तपी - 'मैंने इतना तप किया', तीर्थयात्री - 'मैंने इतने तीर्थ किये' - इस प्रकार अहंकार 'मैं' के रूप में बना ही रहता है । वह बहुरूपिया है, बहुत रूप बना लेता है । बेचारा जीव उसे पहचान नहीं पाता और उसके धोखे में आ ही जाता है ।

'कला विलास' नाम की संस्कृत की एक पुस्तक में दम्भ की (अहंकार के अधिदेवता की) कथा दी हुई है । बड़ी सुन्दर कथा है ।

कहते हैं, एक बार ब्रह्माजी अपनी सभा में बैठे थे । उसमें बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि आदि उपस्थित थे । इतने में सबने देखा कि एक ऋषि खड़ाऊँ पहने हुए चले आ रहे हैं । उनकी जटाएँ बढ़ी हुई हैं और वे हाथ के कमण्डलु में से कुश द्वारा जल छिड़ककर, फिर उस पर पैर रखते हुए आ रहे हैं । यह देखकर सबको बड़ा आश्चय हुआ कि ये ऋषि बड़े अद्‌भुत हैं । अपनेको इतन महान एवं पवित्र मानते हैं कि ब्रह्मलोक जैसे पावन स्थान में भी बिना जल छिड़के पैर नहीं रखते !

सबके देखते-देखते वे ब्रह्माजी के पास आकर खड़े हो गये । उन्होंने न किसीको प्रणाम ही किया और न किसीकी ओर ध्यान ही दिया । सृष्टिकर्ता को भी प्रणाम नहीं किया तो सबने समझा कि ये कोई ब्रह्माजी से भी बड़े होंगे । अब ब्रह्माजी भी उठ खड़े हुए और अपने आसन पर विराजमान होने के लिए उनसे आदरसहित आग्रह किया परंतु उन ऋषि ने बैठने से इनकार कर दिया और बोले :

''छिः ! छिः ! ! तुम्हारे द्वारा प्रयोग किये हुए इस जूठे आसन पर मैं कैसे बैठ सकता हूँ ?''

यह सुनकर ब्रह्माजी भी चिंता में पड़ गये कि अब इनको कहाँ बिठायें क्योंकि वहाँ एकदम नया तो कोई आसन था भी नहीं, जिस पर कभी कोई बैठा ही न हो । थोड़ी देर बाद विचार करके ब्रह्माजी बोले :

''आप मेरी गोद में विराजें ।''

उन ऋषि ने यह स्वीकार कर लिया । उन्होंने

"छिः ! छिः !! हे ब्रह्माजी ! तुम्हारे द्वारा प्रयोग किये हुए इस जूठे आसन पर मैं कैसे बैठ सकता हूँ ?"

अपने कमण्डलु में से कुश द्वारा ब्रह्माजी की गोद में जल छिड़का और गोद में बैठ गये । ऋषियों और ब्रह्माजी ने सोचा, 'चलो, शांति हुई', परंतु क्षण भर भी नहीं बीता होगा कि वे ऋषि बोले :

"देखो, तुम्हारी नासिका में से जो अशुद्ध श्वास निकल रहा है, वह मुझे लग रहा है, उसको रोको ।"

अब ब्रह्माजी घबराये क्योंकि श्वास को रोकना माने मृत्यु को स्वीकारना । ब्रह्माजी ने थोड़ी देर श्वास रोका किंतु वे सोचने लगे कि 'जरा पता तो करें कि इतना पवित्र जो यह बन रहा है, यह वस्तुतः है कौन ?' उन्होंने अपना मुँह थोड़ा आगे बढ़ाया और अपनी गोद में बैठे ऋषि को ध्यानपूर्वक देखा । ज्यों ही पहचाना तो हँस पड़े और बोलें : "बेटा दम्भ ! तुम बहुत दिनों बाद यहाँ पर आये, इसीलिए मैं पहचान नहीं सका ।"

समस्त सृष्टि के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी दम्भ को पहचानने में भूल कर गये तो दूसरों की तो बात ही क्या है ? कथा सत्य हो या कल्पित हो परंतु है बड़ी मार्मिक । साधक साधना कर ले, योगी योग-साधन कर ले, तपस्वी तप कर ले, तीर्थयात्री तीर्थाटन कर ले, भक्त भक्ति कर ले लेकिन कर्तापन का अहंकार भूलना बड़ा कठिन है । इसीलिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है । जब-जब, जहाँ-जहाँ आपके भीतर यह कर्तापन अँगड़ाई लेने लगे, तब-तब, वहाँ-वहाँ जैसे मूर्तिकार मूर्ति बनाते वक्त पत्थर को हथौड़ी व छेनी से काट-काटकर अनावश्यक पत्थर को हटाता है, वैसे ही तुम्हारे अहंकार को गुरु अपनी कुशलता से हटाते रहते हैं । इसीलिए कबीरजी ने कहा है :

सत्गुरु मेरा सूरमा, करे शब्द की चोट ।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट ॥

मेरे सद्गुरु बड़े शूरवीर हैं । वे शब्दरूपी गोला फेंकते हैं और उसकी चोट द्वारा मेरे अज्ञानरूपी किले के कोट को ध्वस्त करके मुझे मोक्षपद का अधिकारी बनाते हैं ।

प्रसंग माधुरी

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः...

गुरु परमात्मा और मनुष्य के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं । सीधे-सीधे कौन परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है ? इस सूर्य को भी सीधे-सीधे देखने में हमारी आँखें समर्थ नहीं हैं और कई साधक कहते हैं कि ध्यान में हमने इतना प्रकाश देखा कि इस सूर्य का प्रकाश भी उसके आगे फीका-फीका लगता है । तो जो प्रकाशों का प्रकाश है, सूर्यों का सूर्य - परम सूर्य है, जो अलख है, अयोनि है, अकाल है, अच्छेद्य है, इन्द्रियातीत है उसे कैसे जानें ?

उपनिषद् कहते हैं, जिससे सब जाना जाता है उसे कैसे जानें, किसके द्वारा जानें ?

नानकजी कहते हैं : **...अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥** जिसका माता की योनि से जन्म नहीं होता तथा जो स्वयंभू अर्थात् स्वाश्रयी है, वह परमात्मा गुरु-प्रसादी से प्राप्त होता है । गुरु में वह अटकल है, जिसके प्रयोग से तुम्हारे भीतर छुपा परमात्मा अपने-आपको प्रकट कर देता है । तुम्हारी अटकलें तो तुम्हें और भटकाव में डालेंगी । वहाँ तो गुरु की अटकलें ही काम देंगी क्योंकि गुरु अपना घर देख चुके हैं । वही घर तुम्हारा भी है । वे ऊँचाई पर खड़े हैं, अतः तुम्हारी स्थिति को भी वे देख रहे हैं और तुम्हारा रास्ता भी उन्हें दिख रहा है, अतः उनकी कृपा से, उनके मार्गदर्शन द्वारा तुम अपना असली घर पा सकते हो ।

विचार मंथन

राग-द्वेष दोनों का ही अंतिम परिणाम लोकोत्तर चमत्कारकारी

समय की वेगवती धारा में सब कुछ बहा जा रहा है । दृश्यमान प्रपंच में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो स्थिर हो । हमारे सामने संसार में कितने ही उत्थान-पतन और उथल-पुथल होते रहते हैं । जब हम किसी लुभावनी वस्तु में आसक्त हो जाते हैं या डरावनी वस्तु से द्वेष करने लगते हैं, तब हमारा अंतरंग राग-द्वेष के लाल-काले रंग में रँग जाता है । हमारा अंग-अंग रागास्पद का संग व द्वेषास्पद का भंग चाहने लगता है । उसीके आवेश में हम अपने स्वरूप को और उसके अनुरूप स्थिति, भावना, अभ्यास और धर्म को भूल जाते हैं तथा आमूल-चूल संसार के दलदल में निमग्न तथा संलग्न हो जाते हैं । वर्तमान स्थिति यह है कि न हमें अपने स्वरूप का ज्ञान है, न पर-रूप का; न हृदय में सद्भावना है, न जीवन में सत्कर्म । जिसका अंग-अंग राग-रंग और दुःसंग से रंग गया है, उसके लिए अज्ञान-निवर्तक तत्त्वज्ञान की तो चर्चा ही क्या हो ! जहाँ भगवद्-चर्चा नहीं वहाँ ब्रह्मचर्चा भी शोभाहीन है । देहावेश की निवृत्ति के लिए देहातिरिक्त आत्मा का ज्ञान आवश्यक है । वह देह नहीं, देही है । पाप-पुण्य का कर्ता है, सुख-दुःख का भोक्ता है । जीव का आदि-अंत यह शरीर ही नहीं है । इस शरीर के पूर्व भी जीवन था और पश्चात् भी रहेगा । आकार, आयु, शक्ति, संकल्प, प्रज्ञा, सुख-दुःख आदि में तारतम्य भी स्पष्ट ही देखने में आता है । शून्य, विज्ञान, भौतिक द्रव्य, प्रकृति, परमाणु अथवा ब्रह्मरूप उपादानों में, चाहे वे एक हों, अनेक हों, सदृश हों, विसदृश हों, संस्काररूप बीज, जो कि पूर्वकर्मानुसार ही होते हैं, के बिना परस्पर विलक्षण, विचित्र एवं विभिन्न जातियों तथा व्यक्तियों के शरीर की उत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती । इसलिए देहातिरिक्त आत्मा को कर्ता, भोक्ता एवं गमनागमनशील जानकर सुखदायक संस्कार उत्पन्न करने के लिए मनुष्य-शरीर में धर्मनिष्ठा की नितान्त आवश्यकता है । धर्मनिष्ठा में ही स्वभाव के परिवर्तन और निर्माण की शक्ति तथा देहावेश की निवृत्ति है ।

धर्मनिष्ठा के साथ-ही-साथ भक्तिनिष्ठा का होना भी आवश्यक है क्योंकि मनुष्य प्राणी का हृदय अत्यन्त संवेदनशील और भावुक है । वह तत्काल प्रिय-अप्रिय के प्रति राग-द्वेष के वशीभूत होकर अपने हृदय में सद्भाव या दुर्भाव को स्थिर आश्रय दे देता है और दुःख भोगने लगता है । राग-द्वेष दोनों का ही अंतिम परिणाम जलन है । इसलिए अपने हृदय में निरंतर लोकोत्तर चमत्कारकारी परमेश्वर का चिंतन करना चाहिए । इसीसे लौकिक-पारलौकिक विषयों के प्रति वैराग्य होता है । अल्प के प्रति वैराग्य हुए बिना अनन्त के प्रति जिज्ञासा, लालसा या प्रगति संभव नहीं । संसार की छोटी-छोटी वस्तुओं में लुभा जानेवाला पुरुष परमात्मा की प्राप्ति का अधिकारी नहीं हो सकता ।

आपके ही लिए

यह देखने में आता है कि चित्तवृत्ति को भौतिक जगत से ऊपर उठा लेने पर जीवन में एक प्रकार का अभिमान उदय होता है । धर्मनिष्ठा से दुश्चरित्रता की निवृत्ति होकर जीवन में सच्चरित्रता को स्थान मिला । भक्तिनिष्ठा से संसार-संबंधी राग-द्वेष की निवृत्ति होकर वैराग्य की प्राप्ति हुई । धन्य है ऐसा जीवन ! दोषों का निर्वाण हुआ, सद्गुणी स्वभाव का निर्माण हुआ; परन्तु इस निर्वाण और निर्माण के ऊँचे सिंहासन पर अभिमान के रूप में एक असुर ने अपनेको आसीन कर दिया और अपनेको सम्मान का भोक्ता बना बैठा ।

व्यावहारिक रूप में अभिमान अथवा अस्मिता की निवृत्ति हो जाने पर भी अविद्या महारानी ज्यों-की-त्यों अपने सिंहासन पर विराजमान रहकर अपने स्वच्छंद साम्राज्य का संचालन करती रहती है । यहाँ तक कि विवेकख्याति हो जाने पर भी अविद्या द्वैत-भ्रान्ति को अपने पेट में छिपाये उपर्युक्त अवसर पर उसका विस्तार करने के लिए भरी-पूरी बैठी रहती हैं और समय
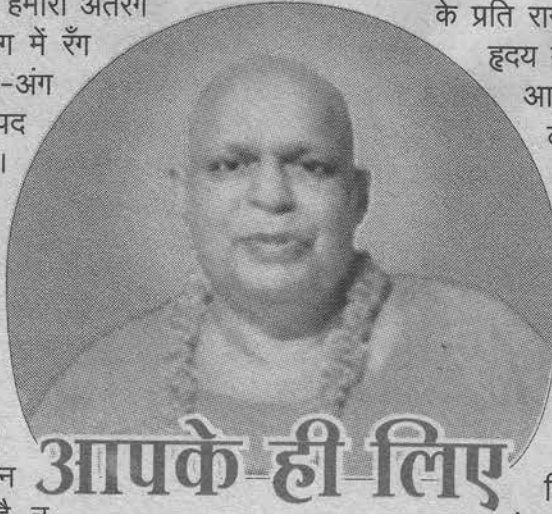
जलन है । इसलिए अपने हृदय में निरंतर परमेश्वर का चिंतन करना चाहिए ।

आने पर कर भी देती है । ब्रह्मात्मैक्यबोध की प्रचण्ड अग्नि के बिना उनका भस्मीभाव नहीं हो सकता । इसलिए अन्ततोगत्वा उपनिषद्-विद्या, वेदान्त-ज्ञान अथवा ब्रह्मात्मैक्य-बोध की शरण लेनी पड़ती है । सम्पूर्ण साधन उसीके सहायक हैं । उसके अतिरिक्त अविद्या की निवृत्ति नहीं हो सकती ।

अभी-अभी यह बात कही गयी है कि ब्रह्मज्ञान से अविद्या की आत्यंतिक निवृत्ति हो जाती है । ज्ञान ही साक्षात् साधन है, अविद्यानिवृत्ति ही फल है; परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि कर्म, भक्ति अथवा योग साधन ही नहीं हैं । आप देख चुके हैं कि चरित्र की पवित्रता और अंतःकरण की शुद्धि के लिए वे कितने उपयोगी हैं । पदार्थ-शोधन में भी स्वाभाविक रीति से क्रमशः स्थूल-सूक्ष्म भ्रान्ति की परतों को हटाते हैं । इन साधनों के अनुष्ठान और अभ्यास का सर्वोत्तम लाभ तो यह है कि वे जिज्ञासु के जीवन में सहज स्वभाव बनकर बैठ जाते हैं और ऐक्यज्ञान के द्वारा अविद्या की निवृत्ति के अनन्तर भी व्यावहारिक ज्ञानी पुरुष को लोक-व्यवहार में महात्मा बनाकर रखते हैं । वे बिना किसी प्रयत्न के बने रहते हैं और जीवन्मुक्ति का विलक्षण सुख देते हैं । उनके बिना न कोई ज्ञान-सम्प्रदाय का आचार्य हो सकता है और न तो सम्प्रदाय-परम्परा का संरक्षण और संवर्द्धन ही हो सकता है । जनसाधारण पवित्र, सच्चरित्र, लोकोत्तर महापुरुष के ज्ञान पर ही श्रद्धा करता है । उनके बिना ज्ञान भी श्रद्धा-भाजन नहीं होता ।

– श्री अखण्डानन्दजी सरस्वती
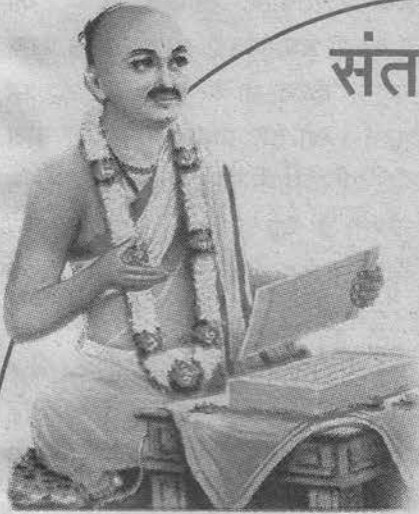
संत एकनाथ महाराज की वाणी

कलियुगामाजीं एक हरिनाम साचें । मुखें उच्चारिता पर्वत छेदी पापांचे ॥
सर्वभावे भजा एक हरीचे नाम । मंगला मंगल करील निर्गुण निष्काम ॥

भावार्थ : **इस कलियुग में एक हरिनाम ही सच्चा है । मुख से उच्चारण करने पर यह पापों के पर्वत नष्ट कर देता है । इसलिए संपूर्ण भक्तिभाव से एक श्रीहरि के नाम का ही भजन करो । मंगलों से भी मंगल यह नाम आपको निर्गुण, निष्काम पद में पहुँचा देगा ।**

महा मात्रा हरीचें नाम । तरती अधमादि अधम । हाचि कलिमाजीं धर्म । नामापरतें न देखे ॥ जगीं नाम तारक नौका । आन उपाय नाहीं देखा । साधन साधितां साधकां । नामापरतें थोर नाहीं । धरा विश्वास बांधा गांठी । नाम जपा जगजेठी । एका जनार्दनीं भय पोटीं । नाहीं तुम्हां काळाचें ॥

भावार्थ : **भगवान श्रीहरि का नाम भवसागर तरने की रामबाण औषधि है । इसके प्रताप से अधम-से-अधम लोग भी तर जाते हैं । हरिनाम का जप ही कलियुग में धर्म है । नाम-जप जैसा प्रभावशाली अन्य कोई साधन मेरे देखने में नहीं आया । यह भवसागर पार करने की तारक नौका है । इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं दिखायी पड़ता । जो साधना में रत हैं उन साधकों के लिए नाम-जप के अलावा और कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है । विश्वास के साथ तत्पर होकर नाम-जप में संलग्न हो जाओ । एकनाथ कहते हैं कि हरिनाम-जप के प्रभाव से तुम्हें कलिकाल का भय नहीं रहेगा ।**

धन्य धन्य तें शरीर । जेथें कथा निरंतर । गुण गाती भगवंताचे । तेचि जाणावे दैवाचे ॥
स्वयें बोलिले जगज्जीवन । थोर कलियुगीं कीर्तन ॥ एका जनार्दनीं भले । हरिभक्तीनें उद्धरिलें ॥

भावार्थ : वह शरीर सचमुच धन्य है जो सदैव भगवत्कथा का सेवन करता है । जो भगवान का गुणानुवाद करते हैं वे ही भगवान के सच्चे भक्त हैं । कलयुग में कीर्तन की बहुत महिमा है ऐसा स्वयं जगन्नियंता भगवान ने कहा है । एकनाथ कहते हैं कि हरिभक्ति से उन भक्तों का भवसागर से सहज ही उद्धार हो जाता है ।

(शयनी एकादशी : ७ जुलाई २००

शयनी एकादशी

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : भगवन् ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ? उसका नाम और विधि क्या है ? यह बतलाने की कृपा करें ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम 'शयनी' है । मैं उसका वर्णन करता हूँ । वह महान पुण्यमयी, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापों को हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है । 'शयनी एकादशी' के दिन जिन्होंने कमल-पुष्प से कमललोचन भगवान विष्णु का पूजन तथा एकादशी का उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओं का पूजन कर लिया ।

'हरिशयनी एकादशी' के दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलि के यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर तब तक शयन करता है, जब तक आगामी कार्तिक की एकादशी नहीं आ जाती । अतः आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशी तक मनुष्य को भलीभाँति धर्म का आचरण करना चाहिए । जो मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है । इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशी का व्रत करना चाहिए । एकादशी की रात में जागरण करके शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान विष्णु व भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । ऐसा करनेवाले पुर के पुण्यों की गणना करने में चतुर्मुख ब्रह्माजी असमर्थ हैं । राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मो प्रदान करनेवाली सर्वपापहारिणी एकादशी के उत्त व्रत का पालन करता है, वह जाति से चाण्डाल हो पर भी संसार में सदा मेरा प्रिय करनेवाला है । उ मनुष्य दीपदान, पलाश के पत्ते पर भोजन और व्र करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं चौमासे में भगवान विष्णु योगनिद्रा - समाधि में शय करते हैं, इसलिए मनुष्य को भूमि पर शयन करन चाहिए । सावन में साग, भादों में दही, क्वाँर में दू और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए । ज चौमासे में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह परम गत को प्राप्त होता है । राजन् ! एकादशी के व्रत से ह मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, अतः सद इसका व्रत करना चाहिए । कभी भूलना नहीं चाहिए **'शयनी' और 'बोधिनी' के बीच में जो कृष्णपक्ष की एकादशियाँ होती हैं, गृहस्थ के लिए वे ही व्रत रखने योग्य हैं - अन्य मासों की कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थ के रखने योग्य नहीं होती । उन्हें शुक्लपक्ष की सभी एकादशियाँ करनी चाहिए ।**

धर्म के लक्षण

महाराज युधिष्ठिर ने देवर्षि नारदजी से कहा : हे भगवन् ! आप तो साक्षात् ब्रह्माजी के पुत्र हैं, योग-समाधि आदि तपस्या में निरत रहते हैं, आपके समान परम गोपनीय धर्म को जाननेवाला, शांत, कारुणिक, साधु तथा नारायणपरायण विद्वान ब्राह्मण, संसार भर में मुझे कोई नहीं दीख पड़ता। अतएव मैं आपसे वर्णाश्रमाचार-सहित, मनुष्योपयोगी सनातन-धर्म का वर्णन सुनना चाहता हूँ । देवर्षि नारदजी बोले :

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम्॥
धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥

अर्थात् भगवान वासुदेव को प्रणाम करके सांसारिक प्राणियों को धर्म की शिक्षा देने के लिए मैं उस सनातन-धर्म का वर्णन करता हूँ, जो मैंने साक्षात् नारायण के मुखारविन्द से सुना है। धर्म को हम चार प्रकार से जान सकते हैं। एक तो वेद से, दूसरे वेदों के अविरुद्ध महर्षिरचित स्मृतियों से, तीसरे सदाचार से और चौथे अन्तःकरण की साक्षी से। अर्थात् वह भी धर्म है जो न तो वेदों में, न स्मृतियों में और न सदाचार ही में पाया जाता है; किंतु जो वेदों, स्मृतियों और सदाचार के विरुद्ध नहीं है तथा जिसके अनुष्ठान से अपना अन्तःकरण प्रसन्न होता है एवं जिसके संबंध में- **'प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'** - कविवाक्य के अनुसार अपना अन्तःकरण साक्षी देता है। इस प्रकार धर्म के साधारण लक्षणों को बतला, नारदजी ने सर्वसाधारण के लिए उपयोगी तीस लक्षणों से युक्त सनातन-धर्म की व्याख्या की है। यथा-

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेच्छा मौनमात्मविमर्शनम्॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मस्सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥

अर्थात् प्राणियों का परम कल्याणकारक सत्य वचन बोलना, दया करना, एकादशी, जयंती आदि व्रतोपवास तथा स्वधर्मपालन में कष्टसहनरूपी तप, कायिक, वाचिक एवं मानस शुद्धता, सहिष्णुता, विवेक, मनःसंयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा-व्रतपरायणता, ब्रह्मचर्यव्रत-पालन, स्वत्वपरित्यागपूर्वक दानशीलता, स्वाधिकारानुकूल जपादि, स्वाध्याय, सरलता, यथाप्राप्त वस्तुओं ही से संतोष, समदर्शी भगवज्जनों की सेवा, प्रवृत्त ग्राम्यधर्म से क्रमशः विरति, निष्काम-भाव से कर्म-फल-त्याग, व्यर्थ की बकवाद का त्याग अर्थात् यथासंभव कम बोलना, अपने शरीर के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में भी आत्मवत् विचार रखना । अपने अधीनस्थ अन्नादि पदार्थों को प्राणियों के हितार्थ यथायोग्य विभाग कर उनमें आत्मबुद्धि तथा परमात्मा की व्याप्ति की बुद्धि रखना, भगवान की नवधा भक्ति करने के लिए भगवत्-कथा सुनना, भगवत्-गुणानुवाद-कीर्तन, हरि की लीलाओं का स्मरण, भगवान की सेवा करना, भगवन्मूर्तियों का पूजन, भगवान की मूर्तियों तथा भगवज्जनों में भगवान की भावना से साष्टांग दण्डवत् करना, सदैव विनम्र भाव से रहना, भगवान के प्रति तथा भगवज्जनों के प्रति दास्यभाव रखना, परमात्मा के प्रति सख्यभाव रखना, अपना तन, मन और धन भगवच्चरणारविंद में अर्पण करना- ये तीस धर्म मनुष्यों के लिए परम धर्म हैं तथा इन धर्मों का यथावत् पालन करने से सर्वान्तर्यामी भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं।

निःसंदेह नारदोक्त तीस लक्षणाक्रांत सनातन-धर्म का पालन मनुष्यमात्र अपने-अपने अधिकारानुसार करके इस संसार में परम कल्याण पा सकते हैं और अपना मानव-जीवन सफल कर सकते हैं। भगवान की नवधा भक्ति के संबंध में अन्यान्य देवोपासकों का कोई विरोध हो ही नहीं सकता । क्योंकि भगवान तो स्वयं कहते हैं कि अन्यान्य देवताओं का श्रद्धापूर्वक यजन मेरा ही यजन है -किंतु मेरा यजन होने पर भी वह है अविधिपूर्वक किया हुआ। अतएव अन्य समस्त देवोपासकों के लिए भी सनातन-धर्म का पालन करना सरल है और उनके लिए परम कल्याणप्रद भी है ।

शरीर स्वास्थ्य

फास्ट फूड : फास्ट डेथ

आजकल आम जनता में स्वास्थ्य के लिए हानिकर एवं घातक रसायनों से बने हुए बाजारू 'कोल्डड्रिंक' पीने में अधिक रुचि ली जाने लगी है। जबकि इसमें आर्थिक हानि के साथ ही स्वास्थ्य की भी अत्यंत हानि होती है।

कोका कोला, पेप्सी आदि प्रसिद्ध कोल्डड्रिंक्स में डी.डी.टी., लीन्डेन, क्लोरपायरीफोस, मेलेथियोन आदि जहरीले रसायन होते हैं। डी.डी.टी. से कैंसर होता है, रोगप्रतिकारक शक्ति का ह्रास होता है और जातीय विकास में विकृति होती है। लीन्डेन से कैंसर होता है, मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र को हानि होती है। क्लोरपायरीफोस गर्भस्थ शिशु को हानि करता है, भावी पीढ़ियों को आनुवांशिक विकृतियों का शिकार बनाता है।

कोल्डड्रिंक्स शरीर से कैल्शियम की मात्रा सोंख लेते हैं। इस कारण बच्चों में जरा-सी चोट में भी हड्डी टूटने की घटनाएँ देखने में आ रही हैं।

मनुष्य के दाँत जो अग्निदाह संस्कार करने या सालों तक जमीन में गाड़ने पर भी जलते या गलते नहीं हैं, उन्हें कोल्डड्रिंक में डालकर रखें तो केवल २० दिन में ही पूर्णरूप से घुल जाते हैं तो ये कोल्डड्रिंक्स पेट में जाकर नाजुक आँतों को कितना भारी नुकसान पहुँचाते होंगे !

कोल्डड्रिंक से गैसयुक्त डकारें, पेट में दाह, एसिडिटी आदि बीमारियों के शिकार होते हैं। इस पेय को टिकाये रखने हेतु प्रयुक्त कार्बन डाईऑक्साइड अगर शरीर से बाहर नहीं निकला तो मृत्यु की भी संभावना होती है।

वातावरण में सीसे की मात्रा बढ़ जाय तो यह श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश कर मस्तिष्क, मांसपेशियों, स्नायुतंत्र तथा यकृत के लिए हानिकारक साबित होता है। वही सीसा कोल्डड्रिंक में करीब ०.४ पी.पी.एम. की मात्रा में डाला जाता है, जबकि वातावरण में ०.२ पी.पी.एम. बढ़ जाय तो भी घातक सिद्ध होता है। इसीलिए सरकार ने सीसारहित पेट्रोल के उपयोग का नियम बनाया है।

बासी पानी, चर्बी, स्वास्थ्यशोषक रासायनिक द्रव्यों से बने कृत्रिम रंग, कृत्रिम मिठास और फलों की केवल दिखावटी खुशबू व स्वाद का एहसास करानेवाले विभिन्न रसायनों आदि से बने आइसक्रीम, कोल्डड्रिंक्स, फास्टफूड हमारे बालकों एवं युवानों को दिनोंदिन खोखला बना रहे हैं। प्राकृतिक आहार - दूध, फल, सब्जियाँ आदि को नजरअंदाज करने के कारण उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट होने की अपेक्षा चरबी एवं मोटापे का ही शिकार होता जा रहा है।

फास्ट फूड से मोटापा होता है जिसके कारण हाई बी.पी (उच्च रक्तचाप), हृदय रोग, डायबिटीज आदि रोग होते हैं। फास्ट फूड खानेवाले के भूख का क्रम गड़बड़ा जाता है जिसे 'ईटींग डिसओर्डर' (Eating disorder) कहते हैं। इससे वह व्यक्ति भूख न लगने पर भी खाता रहता है। फास्ट फूड में हानिकारक जहरीले रसायन मिलाये जाते हैं। जैसे कि बेन्जोइक एसिड जिसकी दो ग्राम मात्रा बंदर या कुत्ते को दी जाय तो वह मर जाता है। मेग्नेशियम क्लोराईड और कैल्शियम साईट्रेट से आँतों में घाव हो जाते हैं, मसूड़ों में घाव हो सकते हैं एवं किडनी क्षतिग्रस्त होती है। एरिथ्रोसीन से अन्ननली और पाचनतंत्र को नुकसान होता है। फास्ट फूड से ई-कोलाई, सालमोनेला, सुजेला, क्लेवसेला आदि जीवाणुओं का संक्रमण होने से न्युमोनिया, बेहोशी, तेज बुखार, मस्तिष्क ज्वर, दृष्टिदोष, स्नायुविकार, हार्ट अटैक आदि बिमारियाँ होती हैं।

न्युजर्सी स्थित 'प्रिन्सटन युनिवर्सिटी' के

प्राकृतिक शीतलता : रोम-रोम में स्फूर्ति

❋ सौंफ, मिश्री व काली द्राक्ष तीनों को रात्रि में पानी में भिगो दें । मिट्टी के बर्तन में भिगोया जाय तो अधिक लाभ होगा । सुबह मसलकर या मिक्सर द्वारा मिलाकर शरबत बना ले । यह शरबत शीतलता, तृप्ति, शक्ति व रुचि वर्धक है ।

❋ अंगूर तथा अंगूर का रस नेत्रज्योतिवर्धक, रक्तशोधक, वीर्यवर्धक, विषैले द्रव्यों को शरीर से निकालनेवाला होता है। इसमें विटामिन 'ए', 'सी' और लौह-तत्त्व है। यह उच्च रक्तचाप, जोड़ों के दर्द, गठिया, सूखा रोग आदि में लाभदायक है। मुनक्का एवं किशमिश भी उपरोक्त गुणों से भरपूर होते हैं। इनका सेवन वर्ष भर कर सकते हैं। कच्चे-खट्टे अंगूर लाभदायक नहीं होते।

❋ कच्चे आम को भूनकर उसका छिलका निकालें तथा गूदे को ठंडे पानी में मसलकर गुड़ व जीरा मिलायें। यह शरबत ग्रीष्मऋतुजन्य विकारों से रक्षा करता है।

पका हुआ आम चूसकर खाना आँखों के लिए हितकर है। यह बच्चों, वृद्धों व कृश लोगों को पुष्ट बनाने का सर्वोत्तम औषध है। आम का रस घी और सोंठ डालकर लेने से भूख बढ़ानेवाला, वायु व पित्तदोषनाशक बनता है। शहद के साथ लेने से क्षयरोग में लाभ होता है। बाजार का डिब्बाबंद रस बासी, पचने में भारी व स्वास्थ्यदृष्ट्या हानिकर होता है।

❋ संतरा प्यास बुझाने में उत्तम, उष्णता निवारक और क्षारीय खनिज लवण से युक्त होता है। शरीर के मल को निकालकर शुद्ध करता है, विषैले द्रव्य निकालता है तथा भूख व पाचन बढ़ाता है। इसे चूसकर अथवा रस निकालकर पीयें, ग्रीष्म की गर्मी से राहत मिलेगी।

विशेष : आम, अंगूर, संतरा आदि खटासयुक्त फल दूध के साथ नहीं लेने चाहिए।

❋ ग्रीष्मकाल में दूध व चावल की खीर, ताजे फलों का रस, शिकंजी, शरबत आदि द्रवरूप, स्निग्ध व मधुर पदार्थों का सेवन बल व तृप्तिदायक है।

इन प्राकृतिक पेय-पदार्थों का उपयोग करके आप पायेंगे उत्तम स्वास्थ्य, ग्रीष्म ऋतुजन्य विकारों से रक्षा, स्फूर्ति और प्रसन्नता तथा प्रीतिपूर्वक भगवन्नाम लेते हुए ये पदार्थ अन्तर्यामी भगवान को भोग लगाने से आप पायेंगे भोग और मोक्ष, योग और तृप्ति।

मनोवैज्ञानिक जोन होवेल कहते हैं, ''पीजा, बर्गर, होट डोग, चाउमिन आदि फास्ट फूड से मस्तिष्क की डोपामीन प्रणाली सक्रिय हो जाती है जो नशीली दवाइयों के लक्षण हैं।''

उत्तम स्वास्थ्यप्रदायक, रस एवं स्वाद से भरपूर, विटामिन्स-कैलरी के साथ ही चुस्ती-फुर्ती देनेवाले दूध, फल, सब्जी आदि प्राकृतिक आहार को त्यागकर केवल रसायनों एवं घृणित प्रक्रिया से बने फास्टफूड, कोल्डड्रिंक्स ही क्या हमारा विवेकयुक्त खान-पान है ? दिन भर की मेहनत से कमाये रुपयों को क्या हम अपने स्वास्थ्य के शत्रु बनने में ही खर्च करेंगे ?

– डॉ. प्रेमजी मकवाणा, एम.बी.बी.एस.

वर्षा ऋतु : सावधानियाँ

संपूर्ण वर्ष की अपेक्षा ग्रीष्म के अंत व वर्षा ऋतु के आरंभ काल (जून माह) में मनुष्य-शरीर में सर्वाधिक दुर्बलता आती है। वर्षा ऋतु में भूमि से वाष्प निकलने, आकाश से जल बरसने तथा जल अम्ल होने के कारण जठराग्नि मंद हो जाती है। वातादि दोष प्रकुपित हो जाते हैं। शरीर की यह स्थिति कई व्याधियों को उत्पन्न करती है। अग्निमांद्य इन व्याधियों का प्रमुख हेतु है। इसलिए वाग्भट्टाचार्यजी ने वर्षा ऋतु में आहार द्रव्यों के साथ-साथ अग्निदीपक पदार्थों का सेवन करने का अनुरोध किया है। इन दिनों में भोजन में अदरक, हींग, अजवाईन, काली मिर्च, मेथी, लहसुन, राई, पुदीना का विशेष उपयोग करना चाहिए। जठराग्निवर्धक कुछ प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। इनका लाभ लें।

१. प्रातःकाल २-३ ग्राम सोंठ का चूर्ण एक चम्मच गाय के घी में मिलाकर गुनगुना उष्ण जल के साथ सेवन करने से क्षुधा की वृद्धि होती है।
२. हरड़ तथा सोंठ को समभाग मिलाकर ३-४ ग्राम मिश्रण ५ ग्राम गुड़ के साथ सेवन करने से अग्नि निरंतर प्रदीप्त रहती है।
३. सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपर, अजवाईन, सैंधा नमक, जीरा, स्याहजीरा (काला जीरा) व घी में भूना हुआ हींग समभाग लेकर खरल में एक साथ महीन पीस लें। यह हिंग्वाष्टक चूर्ण आधा चम्मच तथा गाय का घी एक चम्मच मिलाकर भोजन के समय प्रथम ग्रास के रूप में सेवन करने से जठराग्नि प्रज्वलित हो जाती है, सर्व प्रकार के वातरोग नष्ट हो जाते हैं।
४. सोंठ, जीरा, सौंफ मिलाकर उबाला हुआ पानी पीने से भी जठराग्नि की रक्षा होती है।

दमा के रोगियों के लिए

वर्षा ऋतु में आकाश में बादल छा जाने पर द के मरीजों को श्वास लेने में अत्यधिक पीड़ा होती उस समय निम्न उपाय करें।

१. तिल या सरसों के गर्म तेल में थोड़ा-सा सैं नमक मिलाकर छाती व पीठ पर मालिश क तत्पश्चात् गर्म रेती की पोटली से सेंक करें।
२. अजवाईन, लौंग, वचा (गुडावच) व धतूरे के प का धूआँ दें।
३. लौंग, जायफल, काली मिर्च व मिश्री का १ ग्र समभाग चूर्ण थोड़े से शहद में मिलाकर ३-४ ब चटायें।
४. एक चम्मच गर्म पानी में दो चम्मच (१० से २ मि.ली.) 'महानारायण तेल' मिलाकर पिलायें।
५. उपरोक्त उपायों से कफ पिघलकर बाहर न अ रहा हो तो एक चम्मच मुलेठी (यष्टिमधु) चूर्ण एक चम्मच मिश्री व थोड़ा-सा सैंधा नमक चा कप गर्म पानी (४०० मि.ली.) में मिलाक पिलायें।

पुराने दमे में सरसों के तेल में पुराना गु मिलाकर २-२ ग्राम की गोलियाँ बनाकर ४- गोलियाँ सुबह-शाम लेने से १५-२० दिनों में काफ़ी राहत मिलती है।

वर्षाऋतुजन्य व्याधियों से रक्षा व रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाने हेतु गोमूत्र सर्वोपरि है। सूर्योदय से पू ४० से ५० मि.ली. ताजा गोमूत्र कपड़े से छानकर पीने से अथवा २५ से ३० मि.ली. गोझरण अर्क पानी में मिलाकर पीने से शरीर के सभी अंगों की शुद्धि होकर ताजगी, स्फूर्ति व कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

सिंहासन

बच्चो ! आपको जीभ बाहर निकालकर आवाज करने की शरारत सूझती है एवं ऐसा करने पर सभी आपको डाँटते हैं न ? हम आपको एक ऐसी युक्ति बताते हैं, जिसे अपनाने पर आपको डाँट भी नहीं पड़ेगी और खूब-खूब लाभ होंगे । इतना ही नहीं, हो सकता है आपके माता-पिता भी आपकी इस क्रिया का अनुकरण करने लग जायें ।

विधि :

सूर्योदय के कुछ मिनटों के बाद (लालिमा खत्म होने पर) सूर्य की ओर मुख करके वज्रासन में बैठकर घुटनों को यथासंभव फैला लें । हथेलियाँ जमीन पर इस प्रकार रखें कि उँगलियाँ आपकी ओर रहें । शरीर का वजन पंजों पर डालें । पूरा श्वास लेकर सिर थोड़ा पीछे झुकायें । मुँह खोलकर यथासंभव जीभ बाहर निकालें ताकि जीभ, मुख तथा गले के भीतर तक सूर्य-रश्मियाँ पहुँच सकें । अब श्वास छोड़ते हुए कंठ से आ-आ की ध्वनि कीजिये ।

लाभ : १. गला, नाक, कान, मुख, जबड़ा, जिह्वा व दाँतों के रोगों में तथा तुतलाकर या हकलाकर बोलनेवालों को भी सिंहासन से बड़ा लाभ होता है ।

२. इसे करने से बहुत जल्दी निर्भयता आती है । जो छोटी-छोटी बातों में घबरा जाते हैं उन्हें इस आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए ।

३. जिन्हें अपनी आवाज को स्पष्ट बनाना हो वे भी इसका अभ्यास करके इसके चमत्कारिक प्रभाव का अनुभव कर सकते हैं ।

भक्तों के अनुभव

स्थायी शांति व आनंद मिला

साल भर से ज्यादा समय से 'आस्था इंटरनेशनल' पर प्रतिदिन शाम में एकाग्र मन से बापूजी का सत्संग सुनता हूँ और उसका जितना बन सके उतना अमल भी करता हूँ । किसी कारणवश शाम को यदि घर पर न रहूँ, तब विडियो टेप लगाकर जाता हूँ । रात को 'संस्कार चैनल' पर सत्संग सुनने के बाद ही सोता हूँ । इससे मुझे बहुत लाभ होता है ।

मैंने तीनों देवों ब्रह्मा-विष्णु-महेश, जगदंबाजी और गणेशजी की ३० वर्षों में ३५ यात्राएँ कीं । ४ वेदोंसहित सभी शास्त्रों, पुराणों का स्वाध्याय किया और श्रवण भी किया लेकिन उसके द्वारा प्राप्त आनंद और शांति मन में हमेशा के लिए स्थान प्राप्त न कर पाये । पूज्य बापूजी के सत्संग-सान्निध्य ने मुझे स्थायी शांति और आनंद प्रदान किया है । बापूजी के आशीर्वाद से मुझे दिव्य अनुभूतियाँ हुई हैं और दिन-रात मैं बापूजी से प्राप्त सकारात्मक शक्ति का अनुभव करता हूँ । इसी शक्ति से दिन का हर पल बिताता हूँ ।

मुसीबत के समय में बापूजी सपनों में दर्शन देकर हृदय में वह रोशनी देते हैं, जिससे संकट का समाधान प्राप्त होता है । बापूजी के आशीर्वाद ने मुझ पर वायु की गति से परिणाम किया है ।

बापूजी ! आप इस दशक के चलते-फिरते साक्षात् आत्मास्वरूप भगवान हैं, जिन्होंने अगणित मनुष्यों की नैया को संसाररूपी भवसागर के पार लगा दिया है ।

– जीतुभाई जवेरी, मुंबई ।
संपर्क : ९३२३१३०३६५.

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

२३ अप्रैल की शाम जबलपुर आश्रम (म.प्र.) के नाम रही। पूज्यश्री नवनिर्मित सत्संग-पंडाल के उद्घाटन के निमित्त यहाँ पधारे थे, लेकिन स्थानीय भक्तों की उपस्थिति से ही पंडाल को नन्हा पड़ता देख उसे और बड़ा करने का निर्देश देते हुए लोकार्पण समारोह स्थगित किया गया। अस्थायी पंडाल लगाकर बैठक व्यवस्था बढ़ायी गयी।

एक शाम के लिए पधारे पूज्य बापूजी को यहाँ के श्रद्धावान भक्तों ने अपनी श्रद्धा की डोरी से ३ दिनों तक इस संस्कार नगरी में रोके रखा। हर शाम दर्शन-सत्संग-ध्यान के क्षणों में धनभागी हुए जबलपुरवासी।

जबलपुर जेल के अधीक्षक श्री शरद दवे के विशेष आमंत्रण पर पूज्यश्री ने श्री सुरेशानंदजी को प्रतिनिधि के रूप में प्रवचन करने हेतु जेल में भेजा। कारागार में आयोजित इस संस्कार सत्संग में श्री सुरेशानंदजी ने 'देव दुर्लभ मानव-शरीर को लोक-परलोक सुधारने का साधन' बताया और उत्तम संस्कारों का सिंचन किया। पूज्यश्री ने टेलीफोन से कैदियों को संबोधित किया जिसका प्रसारण ध्वनि विस्तारकों द्वारा संपूर्ण जेल में किया गया । पूज्यश्री ने कहा : ''यदि आप जेल को महामंदिर समझें और ईश्वर को साक्षी मानकर स्वयं को ईश्वर का अंश मान लें तो आपका हृदय मंदिर बन जायेगा। जब ईश्वर-भक्ति से आपका जीवन सुधरेगा, तब आपका भला तो होगा ही, समाज का भी भला होगा।''

इस अवसर पर ३००० कैदियों को पूज्यश्री अमृतवाणी पर आधारित साहित्य निःशुल्क भेंट वि गया। दुर्गुण छोड़ के सज्जनता, सद्गुण बढ़ानेवा साहित्य दिया गया।

२७ से २८ अप्रैल की दोपहर तक करेली (म.प्र.) पूज्यश्री के सत्संग ज्ञानामृत की अमृतवर्षा हुई। य पूज्यश्री का पहली बार आगमन हुआ। करेली में सत्स की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री सागर (म.प्र.) पहुँचे जहाँ २ अप्रैल की शाम से ही सत्संग का शुभारंभ हुआ। दोपह की तपती धूप और भीषण गर्मी भी बापू के दीवानों व रोक नहीं सकी। हजारों की संख्या में भक्तों के कद सत्संग स्थल की ओर बढ़ते रहे। पूज्य बापूजी व्यासपीठ पर आगमन के पूर्व ही ४ बजे से आसमान प बादल छा जाने से धूप की तपन कुछ कम हुई और लोग ने शारीरिक राहत महसूस की। ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूज का व्यासपीठ पर आगमन हुआ तब श्रद्धालुवृंद स्वागत खड़े हो गये। भक्तगण धूप की तपन, ग्रीष्म ऋतु की गम भूल गये और एकतान हो गये आत्मारामी संत के दर्शन-सत्संग में । पूज्यश्री की मधुर, सारगर्भित सूत्रात्मक अमृतवाणी में उन्हें मिली शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिक राहत की कुंजियाँ। २९ अप्रैल को सागर में सत्संग की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री भोपाल (म.प्र.) पहुँचे जहाँ ३० अप्रैल की एक शाम भोपालवासियों के नाम दज

हुई।

३ व ४ मई को इन्दौर (म.प्र.) में अभूतपूर्व सत्संग समारंभ का नजारा रहा। इस वर्ष सत्संगियों का सैलाब देखते ही बनता था। यहाँ ४ वर्ष बाद सत्संग रसपान करने का अवसर मिला। इन्दौर व आसपास के इलाकों से आये भक्तों की भारी भीड़ ने माहौल को कुंभ-सा कर दिया।

पुराण प्रसिद्ध गालव ऋषि की तपोभूमि ग्वालियर (म.प्र.) में छठवीं बार पधारे पूज्यश्री के सत्संग-गंगा का प्रवाह ६ व ७ मई को आश्रम-परिसर में हुआ।

७ मई की शाम सत्संग पूर्णाहुति और लोकलाड़ले, हृदय सम्राट पूज्य गुरुदेवश्री की विदाई की वेला पत्थर दिल को भी एक बार पिघला देनेवाली दुर्लभ वेला थी। विदाई के क्षणों में हजारों-हजारों महिलाओं के साथ पुरुष भी भावविभोर हो उठे, उनके नेत्रों से बह उठी अश्रुधारा। इसी बीच 'ना जाओ, ना जाओ गुरुवर...' विदाई के इस करुण गीत को सुनते ही भक्तवृंद जो पहले से ही भावविभोर थे, वे फफककर रो पड़े। रोते-बिलखते भक्तों की आवाजें चहुँओर से गूँज उठीं 'मत जाओ, मत जाओ... बापू' बड़ा ही मर्मस्पर्शी दृश्य था। भक्त और भगवद्प्राप्त संत के बीच कैसा हृदयग्राही रिश्ता होता है, इसका इससे उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

भक्त और भगवद्प्राप्त सद्गुरुदेव के अटूट आत्मिक संबंधों के साक्षी इस दृश्य को जितना हो सका हमारे कैमरामेन ने अपने कैमरे में कैद करने का प्रयास

भोपाल (म.प्र.)

किया है, इसे MP-३ या ७ मई की वी.सी.डी. में सुना, देखा जा सकता है।

वैशाखी पूर्णिमा के निमित्त ३ दिवसीय दर्शन-सत्संग समारोह हरिद्वार (उत्तरांचल) में ११ से १३ मई तक गंगातट पर संपन्न हुआ। हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी यहाँ कुंभ-सा नजारा दृष्टिगोचर हुआ। समस्त देवनगरी में चाहे हर की पौड़ी हो, रेलवे स्टेशन हो, बस स्टैन्ड हो या फिर देवनगरी की कोई धर्मशाला हो या कोई भी गंगा का घाट- चहुँओर पूज्य बापूजी के साधकवृंद नजर आये। ३ दिनों तक समूचा हरिद्वार हरि ॐमय रहा।

हैण्डलूमवाले हों चाहे हैण्डबैगवाले हों, आसनवाले हों चाहे मालावाले हों, कोई भी व्यवसायवाले हों, सभी व्यापारी खुशहाल हो गये। पूज्य बापूजी का सत्संग हरिद्वार में मिलता है तो हरिद्वारवालों को लक्ष्मी की कमाई भी होती है और नारायण की भक्ति भी। हरिद्वारवालों के लिए तो बापूजी का सत्संग लक्ष्मीनारायण हो जाता है।

इन्दौर (म.प्र.)

पूज्य बापूजी के आगामी सत्संग कार्यक्रम : दि. ९ से ११ जून कड़कड़डूमा गाँव, बिड़ला डेरी फार्म, पूर्वी दिल्ली। संपर्क : (०११) २२८२५१७५, ९८१०६४२६३९, ९८१००४४८७५.
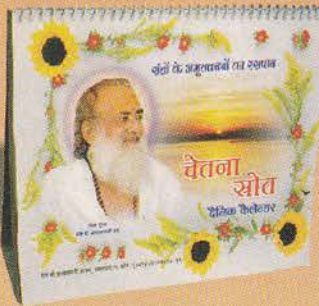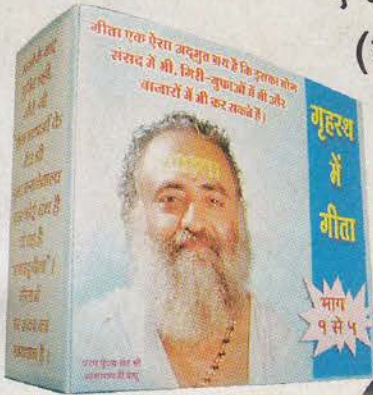
मनीऑर्डर अथवा डी.डी. भेजते समय वस्तु का नाम अवश्य लिखें ।
पता : सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद ।